संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

अंक : १५८
फरवरी २००६
मूल्य : रु. ६/-

परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू
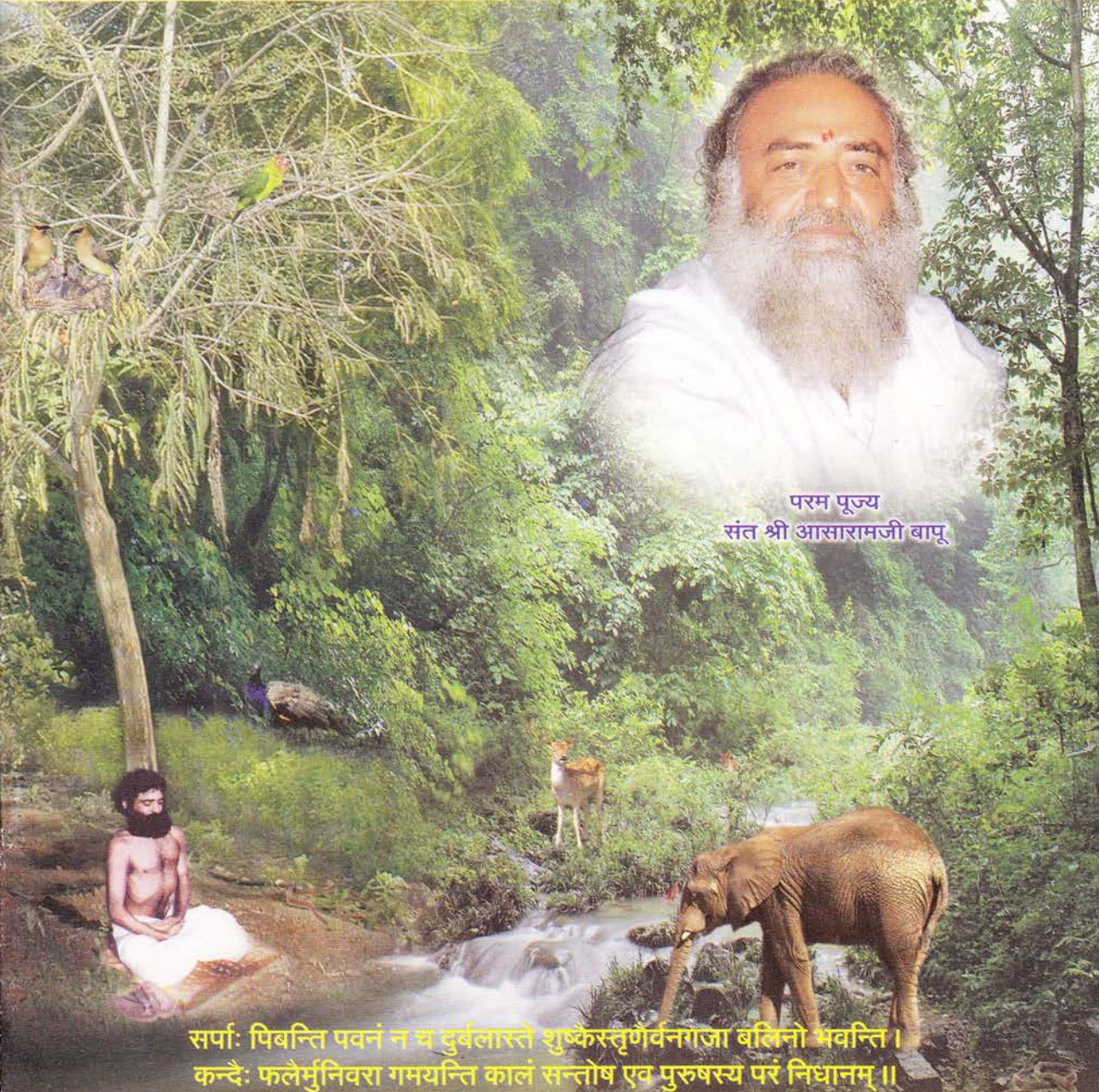
सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालं सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥
सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् । कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ?

'सर्प केवल वायु ही पीते हैं फिर भी वे दुर्बल नहीं होते। वन में विचरण करनेवाले गज केवल सूखे तिनके खाकर ही बलवान बने रहते हैं। मुनिगण केवल कंद और फल खाकर अपना समय व्यतीत कर लेते हैं। संतोष ही मनुष्य का सबसे बड़ा धन है। सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त तथा शांत चित्तवाले पुरुषों को सुख प्राप्त होता है, धन के लोभ में इधर-उधर दौड़नेवाले धनलोलुप व्यक्तियों को वह सुख कहाँ ?' (पंचतंत्र : २.१५९,१६०)

नुआखेता, जि. अनगुल (उड़ीसा) एवं बड़गाँव, जि. खरगोन (म.प्र.) के आदिवासियों में भंडारा तथा राठ, जि. हमीरपुर (उ.प्र.) में अनाज--वितरण। 'पूज्य बापूजी हम गरीबों, दीन-अनाथों का कितना ख्याल रखते हैं !' इस भावना से उनका हृदय गद्गद हो रहा है।

दरिद्रनारायणों में वस्त्र, बर्तन, मिठाई, अनाज, सत्साहित्य आदि का वितरण कर हर दिल में मधुरता का संचार करके हजारों-लाखों दरिद्रनारायणों के दिलरूपी देवता को प्रसन्न करते हुए बोईसर, जि. थाने (महा.); बड़ौदा (गुज.) तथा अंबिकापुर (छ.ग.) के साधकगण।

'जन सेवा ही ईश्वर सेवा' को सार्थक कर सुंदरगढ़ (उड़ीसा), भरतपुर (राज.) व दुर्गापुर, जि. चंद्रपुर (महा.) के भक्तगण वस्त्र, बर्तन, मिठाई आदि से स्नेहभरी सेवा करते हुए।

'मेरे हरि बसे सबके उर माँहिं' की पवित्र भावना मन में सँजोये हुए खन्ना, जि. लुधियाना (पंजाब) व बड़वानी (म.प्र.) के भक्तों द्वारा दरिद्रनारायणों में भोजन, वस्त्र, बर्तन, अनाज आदि जीवनोपयोगी सामग्री का वितरण।

जो हैं शोषित दीन-दुःखी और बेसहारे धरती के। देकर स्नेह, सहारा उनको घर-घर में उजियारा कर दो ॥ छिन्दवाड़ा (म.प्र.) पेठ, जि. नासिक (महा.) में अनाज, वस्त्र, बर्तन, कंबल, मिठाई और सत्साहित्य का वितरण कर रहे हैं पूज्य बापूजी के लाड़ले।

चकले पर अंकित हुई पूज्य बापू की तस्वीर

पृष्ठ क्र. २५

वर्ष : १६ अंक : १५८ फरवरी २००६ माघ-फाल्गुन, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

कर्म को योग बनाओ

पृष्ठ : २

नरक के तीन द्वार

काम क्रोध लोभ

पृष्ठ : १६

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।

कर्म को योग बनाओ

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

कर्म करते-करते हम भगवत्प्राप्ति कैसे कर सकते हैं ? इस संबंध में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥
(गीता : ४.१६)

'कर्म क्या है और अकर्म क्या है ? - इस प्रकार का निर्णय करने में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिए हे अर्जुन ! वह कर्मतत्त्व मैं तुझे भलीभाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभ से अर्थात् कर्मबंधन से मुक्त हो जायेगा।'

कर्म ही हैं जो व्यक्ति को पुण्य देते हैं या पाप देते हैं। पुण्य बाँधता है स्वर्गों में और भोगों में भटकाता है; पाप बाँधता है नरकों में तथा नीच योनियों में, दुःखों में भटकाता है, लटकाता है।

कर्म किये बिना हम रह नहीं सकते। सब कर्म छोड़के आलसी होकर बैठे रहें, फिर भी कुछ-न-कुछ मन से, तन से कर्म होंगे ही। कर्म से पलायन करने से कर्म का त्याग नहीं होता और कर्म करते रहने से भी कर्म का त्याग नहीं होता, कर्म करने में केवल सावधानी रखनी चाहिए।

कर्म करते समय शरीर-मन के तीन-तीन दोष और वाणी के चार दोष - इन दस दोषों को अपने में से निकाल दीजिये तो आपके कर्म ईश्वर से साक्षात्कार कराने का महान मार्ग दे देंगे ।

किसी घोड़े या हाथी को 'हार्टअटैक' आया हो, ऐसा कभी सुना है क्या ? मनुष्यों को ही क्यों आता है ? क्योंकि मनुष्य ने जिम्मेदारी और कर्म में कर्तापने की गलती अपने पर थोप दी है।

फलेच्छा, ममता और आसक्ति के कारण ही कर्म बाँधते हैं । फलेच्छा, ममता और आसक्ति बिना के जो कर्म हैं, वे कर्ता को नैष्कर्म्य सिद्धि - ईश्वर से जोड़ते हैं। ईश्वर से जोड़ देते हैं यह भी कहनेमात्र को है, वास्तव में हर जीव ईश्वर से जुड़ा है। हम ईश्वर से अलग थे नहीं, हैं नहीं, हो सकते नहीं । फिर भी कर्मफल-लोलुपता ने हमको ईश्वरीय सुख से वंचित कर दिया। ईश्वरीय सुख पाने का सुंदर उपाय है कि फल की इच्छा, ममता और आसक्ति न हो।

भगवान बोलते हैं क्रिया अर्थात् कर्म, अकर्म एवं विकर्म (पापकर्म) - ये सब भाव के अनुसार होते हैं। युद्ध जैसा घोर कर्म करने से अर्जुन झिझकता है और कहता है : **सर्वकर्माः सदोषशास्ताः** - कर्ममात्र सदोष हैं । **तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव** - फिर युद्ध जैसे घोर कर्म में आप मुझे क्यों नियोजित कर रहे हैं ?

भगवान कहते हैं कर्म तो करें लेकिन उसमें फलेच्छा, ममता और आसक्ति न करने से कर्म अकर्म हो जाता है। युद्ध करते हुए भी तुम अकर्म अवस्था को अर्थात् मुक्ति को प्राप्त हो जाओगे।

निवृत्ति में प्रवृत्ति बंधनरूप नहीं है किंतु कामना, ममता और आसक्ति ही जीव के लिए अड़चन पैदा करती हैं, बंधनरूप हैं । अब ये बंधनरूप कामना, ममता, आसक्ति न आयें इसलिए मनु महाराज ने बताया कि आप कर्म करते समय शरीर के, मन के जो तीन-तीन दोष हैं और वाणी के चार दोष हैं - इन दस दोषों को छाँट

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

दीजिये, अपने में से निकाल दीजिये तो आपके कर्म ईश्वरप्राप्ति करानेवाले हो ही जायेंगे । कर्म ईश्वर से साक्षात्कार कराने का महान मार्ग दे देंगे आपको।

चोरी-बेईमानी से बचें, हिंसा, व्यभिचार से बचें तो यह तनशुद्धि हो गयी आपकी। आपका तन पाप के बंधन से रहित हो जायेगा। दूसरों के द्रव्य का हरण करना, दूसरे के अनिष्ट का संकल्प करना और हठ या दुराग्रह करना - ये मन को बाँधनेवाले हैं। आप परद्रव्य-हरण नहीं करते, परस्त्रीगमन का संकल्प नहीं करते और हठ-दुराग्रह नहीं करते तो आपका मन शुद्ध हो जायेगा। वाणी के चार दोषों से बचें - झूठ न बोलें, चुगली न करें, कठोर न बोलें और एक का दोष दूसरे को बताने की गलती न करें।

कर्म के प्रभाव से, धन के प्रभाव से विवेक नहीं जगता किंतु हरि-गुरु की कृपा से निर्मल विवेक सजाग होता है।

ऐसे तो आप कठोर न बोलें परंतु व्यवहार में, घर में, समाज में आपको गुस्सा करना पड़े तो यह भी कठोरता हुई। गुस्सा करके आप अंदर से तप जाते हो, दूसरे का अहित करते हो तो आपको हानि होती है पर गर्जना करके, फुफकार करके दूसरों को हानि से बचाते हो तो वह कठोरता दोष नहीं मानी जाती। ...तो कर्म का रहस्य समझना पड़ेगा।

और इसके लिए भगवान कहते हैं, **'व्यवसायात्मिका'** बुद्धि हो। मतलब कि जो बुद्धि यह विचार करती है कि क्या करना है और उसका परिणाम क्या आयेगा ? आम आदमी की **'अव्यवसायात्मिका'** बुद्धि होती है कि इन्द्रियों ने दिखा दिया, मन ने लोलुपता कर दी, बुद्धि सहमत हो गयी और कर्म कर बैठे; इसीसे लोग कर्मबंधन में, भोगबंधन में, आसक्ति-बंधन में पड़े हैं।

कर्म तो करो किंतु कर्म के पीछे आप बुद्धियोग लगाओ कि आप जो कर्म करते हैं उसका फल क्या होगा ? उसका परिणाम क्या होगा ? उस कर्म की विधि क्या है ? यह कर्म हमको बाँधेगा कि आत्मसुख में ले जायेगा ? यह कर्म हमको स्वच्छंदी बनायेगा कि स्वतंत्र बनायेगा ?

एक होता है स्वतंत्र - 'स्व' के तंत्र में आ गये। दूसरा होता है स्वच्छंदी; जैसे पतंगा है। कोई उसको रोक नहीं सकता। जहाँ भी मन आया चल दिया। मक्खी स्वच्छंदी है। जिसका मन किसी बड़े-बुजुर्ग, गुरु के कहने से वरे नहीं उसे 'आवारा' बोलते हैं। आवारा होने से आप सुख के लिए दौड़ेंगे तो दुःख, बेइज्जती और विफलता आयेगी। शास्त्र और सत्पुरुष जहाँ आपको वारें वहाँ आप वरते जायें तो आप स्वतंत्र हो जायेंगे, 'स्व' में स्थित हो जायेंगे।

अब आप क्या करें कि अपना विवेक जगायें। विवेक कर्म से नहीं मिलता, वह कर्म का फल नहीं है अपितु ईश्वरदत्त प्रसाद है। जितना अधिक ईश्वर का सुमिरन करते हो, ईश्वर से अपनत्व जोड़ते हो उतना ही वह अधिक मिलता है।

कर्म में योग लाने की एक तरकीब यह है कि 'मिली हुई चीज मैं नहीं हूँ और मेरी नहीं है तथा विवेक कर्मसाध्य नहीं है।' - ऐसा जानकर कर्म करें।

तुलसी हरि गुरु करुणा बिना
विमल विवेक न होई।

हरि और गुरु की कृपा के बिना निर्मल विवेक नहीं होता। एक होता है सामान्य विवेक, दूसरा होता है वास्तविक विवेक। शरीर को सुख-सुविधा दिलाने का विवेक सामान्य विवेक है। वास्तविक विवेक यह है कि आखिर यह शरीर मर जायेगा, फिर क्या ? इतना भोग लिया, फिर क्या ? इतना पा लिया, आखिर क्या ? यह निर्मल विवेक पाना मनुष्य के भाग्य में है। शादी हो गयी, शत्रुओं पर हावी हो गये, मित्रों का झमेला बढ़ा दिया **ततः किम्** - फिर क्या ? ऐसे बन गये कि वाह-वाह !... लेकिन 'वाह-वाह !' किसकी हो रही है ? मरनेवाले शरीर की। उसी 'वाह-वाह' में खपने के लिए कर्म कर रहा है तो कर्म का बंधन बढ़ रहा है तेरा। स्तुति के लिए, शरीर की वाहवाही के लिए कर्म करोगे तो बंधन में फँसोगे; ईश्वरप्रीति के लिए कर्म करोगे तो बंधनमुक्त हो जाओगे। निंदनीय कर्मों से बचो परंतु सत्कर्म करते हो फिर भी निंदा होती है तो जूते के तले धरो।

आदर तथा अनादर, वचन बुरे त्यों भले।
स्तुति-निंदा जगत की, धर जूते के तले ॥

यह पक्का कर लो। आप इस देह के आदर-अनादर को महत्त्व न दो बल्कि देही के, उस आत्मा के सुख का ख्याल करो।

आप अविनाशी हैं, शरीर नाशवान है। आप नित्य हैं, शरीर अनित्य है। आप ज्ञानस्वरूप हैं, चेतनस्वरूप हैं; शरीर अज्ञानमय है और जड़रूप है। जो शरीर की वाहवाही और सुविधा में अपनी समय-शक्ति बरबाद करके आत्मघात करें, ऐसे लोगों को 'विमूढ़' - महामूर्ख कहा है भगवान ने। ऐसे लोगों को भगवान ने गीता में १०८

(शेष पृष्ठ ५ पर)

आत्मशिव से मुलाकात

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

शिवरात्रि का जो उत्सव है वह तपस्या प्रधान उत्सव है, व्रत प्रधान उत्सव है। यह उत्सव मिठाइयाँ खाने का नहीं, सैर-सपाटा करने का नहीं बल्कि व्यक्त में से हटकर अव्यक्त में जाने का है, भोग से हटकर योग में जाने का है, विकारों से हटकर निर्विकार शिवजी के सुख में अपने को डुबाने का उत्सव है।

'महाभारत' में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को शिव-महिमा बताते हुए कहते हैं : ''तत्त्वदृष्टि से जिनकी मति सूक्ष्म है और जिनका अधिकार शिवस्वरूप को समझने में है वे लोग आत्मशिव का पूजन करें, ध्यान करें, समत्वयोग को प्राप्त हों, नहीं तो शिव की मूर्ति का पूजन करके हृदय में शुभ संकल्प विकसित करें अथवा शिवलिंग की पूजा करके अपने शिव-स्वभाव को, अपने कल्याण स्वभाव को, आत्मस्वभाव को जाग्रत करें।''

मोहरात्रि, कालरात्रि, दारुण रात्रि एवं अहोरात्रि, ये जो पर्व हैं इन दिनों में किया हुआ ध्यान, भजन, तप, जप अनंत गुना फल देता है।

मनुष्य जिस भाव से, जिस गति से परमात्मा का पूजन, चिंतन, धारणा, ध्यान करता है, उतना ही उसकी सूक्ष्म शक्तियों का विकास होता है और वह स्थूल जगत की आसक्ति छोड़कर सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम स्वरूप परमात्मा शिव को पाकर इहलोक एवं परलोक को जीत लेता है।

इहलोक और परलोक में ऐंद्रिक सुविधाएँ हैं, शरीर के सुख हैं लेकिन अपने को 'स्व' के सुख में पहुँचाये बिना शरीर के सुख बे-बुनियाद और अस्थायी हैं। अनुकूलता का सुख तुच्छ है, आत्मा का सुख परम शिवस्वरूप है, कल्याणस्वरूप है।

जो प्रेम परमात्मा से करना चाहिएं वह किसीके सौंदर्य से किया तो प्रेम द्वेष में बदल जायेगा या सौंदर्य ढल जायेगा अथवा तो सौंदर्य ढलने के पहले ही आपकी प्रीति ढल जायेगी। जो मोहब्बत परमात्मा से करनी चाहिए वह अगर हाड़-मांस के शरीर से करोगे तो अपना और जिससे मोहब्बत करते हो उसका, दोनों का अहित होगा।

जो विश्वास भगवान पर करना चाहिए, वह विश्वास अगर धन पर करते हो तो धन भी सताता है। इसलिए अपने ऊपर कृपा कीजिये, अब बहुत समय बीत गया।

जैसे पुजारी ब्राह्मण लोग अथवा भक्तगण भगवान शिव को पंचामृत चढ़ाते हैं, ऐसे ही आप पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश - इन पंचभूतों से बने हुए पंचभौतिक पदार्थों का आत्मशिव की प्रसन्नता के लिए सदुपयोग करें और सदाचार से जीयें तो आपकी मति सत्-चित्-आनंदस्वरूप शिव का साक्षात्कार करने में सफल हो जायेगी।

जो पंचभूतों से मिश्रित जगत में कर्ता और भोक्ता का भाव न रखकर परमात्मशिव के संतोष के लिए तटस्थ भाव से पक्षपात रहित, राग-द्वेष रहित व्यवहार करता है वह शिव की पूजा ही करता है।

मन सुखी होता है, दुःखी होता है। उस सुख-दुःख को भी कोई सत्यस्वरूप देख रहा है, वह कल्याणस्वरूप आपका शिव है आप उससे मुलाकात कर लो।

पंचभूतों को सत्ता देनेवाला वह आत्मशिव है। उसके संतोष के लिए, उसकी प्रसन्नता के लिए जो संयम से खाता-पीता, लेता-देता है; भोग-बुद्धि से नहीं निर्वाह बुद्धि से जो करता है उसका तो भोजन करना भी पूजा हो जाता है।

मोहरात्रि (जन्माष्टमी), कालरात्रि (नरक चतुर्दशी), दारुण रात्रि(होली) एवं अहोरात्रि (शिवरात्रि), ये जो पर्व हैं इन दिनों में किया हुआ ध्यान, भजन, तप, जप अनंत गुना फल देता है। जैसे, किसी चपरासी को एक गिलास पानी पिला देते हो, ठीक है, वो बहुत-बहुत तो आपकी फाइल एक मेज से दूसरी मेज तक पहुँचा देगा किंतु आपके घर पर प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति पानी का प्याला पी लेता है तो उसका मूल्य बहुत हो जाता है। इसलिए पद जितना-जितना ऊँचा है, उससे संबंध रखने से उतना ऊँचा लाभ होता है। ऊँचे-में-ऊँचा सर्व राष्ट्रपतियों का भी आधार, चपरासियों का भी आधार, संत-साधु सबका आधार परमात्मा है, आप परमात्मा के नाते अगर थोड़ा-बहुत भी कर लेते हो तो उसका अनंत गुना फल होना स्वाभाविक है।

जो शिवरात्रि को उपवास करना चाहे, जप करना चाहे वह मन-ही-मन शिवजी को कह दे :

देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव ॥
तव प्रभावाद्देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति।
कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि ॥

'देवदेव ! महादेव ! नीलकण्ठ ! आपको नमस्कार है। देव ! मैं आपके शिवरात्रि-व्रत का अनुष्ठान करना चाहता हूँ। देवेश्वर ! आपके प्रभाव से यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधा के पूर्ण हो और काम आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें।'

(शिवपुराण, कोटिरुद्र संहिता अ. : ३७)

महापुरुषों का हृदय

(श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती : १ मार्च)

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

स्वामी रामकृष्ण परमहंस नरेन्द्र के प्रति बहुत स्नेह रखते थे। नरेन्द्र न आते तो बार-बार उनके बारे में पूछते। नरेन्द्र ने एक दिन कह दिया कि ''गुरुजी ! मैं नहीं आता हूँ तो आप बार-बार मेरे लिए पूछते हैं; नरेन्द्र-नरेन्द्र का रटन करते हैं। गुरुजी ! आप बुढ़ापे की उम्र में एक लड़के में आसक्त हो रहे हैं। राजा भरत ने हिरण का चिंतन किया था तो अगले जन्म में उन्हें हिरण की योनि प्राप्त हुई थी। क्या आप ऐसा तो नहीं कर रहे हैं ?''

स्वामी रामकृष्ण का हृदय भर आया। बोले : ''तुम्हारे में कैसी-कैसी संभावनाएँ हैं, तुम्हें पता नहीं। अगर मैं तुम्हारे पीछे पड़कर तुम्हें न उठाऊँ तो वे संभावनाएँ ऐसी-की-ऐसी ही रह जायेंगी। फिर मेरे इन हिन्दुस्तानी भाइयों का क्या होगा ? मैं इसलिए तुझे याद करता हूँ।'' कैसा रहा होगा उन रामकृष्ण का हृदय ! कैसी रही होगी उन ब्रह्मज्ञानियों के दिल में मानवता की कीमत ! वही जानें। हम क्या जानें ?

आज विरोधी तत्त्व मानवता को अपने अहंकार का शिकार बनाकर लड़ा रहे हैं, भड़का रहे हैं, जला रहे हैं, अपना उल्लू सीधा करने के लिए मानवता को उल्लू बनाये जा रहे हैं। उन लोगों को भगवान सद्‌बुद्धि दें।

राजसत्ताएँ अहंकार से उद्विग्न होकर आपस में टकराती हैं और अशांति की आग भड़कती है- ऐसा भले ही हमारे देश में न भी हो; किंतु विश्व-मानव जब उस अशांति की आग में जलता है तो संत का दिल द्रवीभूत हो जाता है। विचारों में विषमता हो सकती है, खान-पान, रहन-सहन में विषमता हो सकती है और यह जरूरी भी है। यह भिन्नता विकास के लिए, विनोद के लिए, उल्लास के लिए, उन्नति के लिए महापुरुषों को स्वीकार है। लेकिन यह भिन्नता जब अहं का रूप ले लेती है, एक मत दूसरे मत की, एक पंथ दूसरे पंथ की, एक मजहब दूसरे मजहब की, एक पार्टी दूसरी पार्टी की, एक देश दूसरे देश की कब्र खोदने की जब सोचता है तो महापुरुषों के चित्त में बड़ी पीड़ा होती है और उसी पीड़ा की निवृत्ति के लिए महापुरुष निर्विकल्प समाधि छोड़कर, त्रिभुवनपति के आनंद को छोड़कर समाज में घूमते-फिरते हैं, ताकि मेरा यह मानव-समाज इस भिन्नता में अभिन्नता के दर्शन कर सके, इस भिन्नता में और विषमता में भी समता का संगीत सुन सके।

मानव ! तुझे नहीं याद क्या, तू ब्रह्म का ही अंश है।

हे मानव ! तू चाहे अपने को मुसलमान मान, ईसाई मान या भैया ! तू अपने को यहूदी मान परंतु तू है मेरे परमात्मा का, तू है मेरे उस अखंड पुरुष का। मान्यताएँ मन की हैं और वे भिन्न-भिन्न हों स्वाभाविक है। मुझे उससे कोई वैर-विरोध नहीं है। आपस में कोई भिन्नता है तो मुझे इतनी पीड़ा नहीं होती पर वे मान्यताएँ जब कटु रूप ले लेती हैं, भिन्नताएँ जब वैर-द्वेष का रूप ले लेती हैं, भिन्नताएँ अगर अशांति की आग का रूप ले लेती हैं तो मेरा चित्त द्रवित हो जाता है।

मैं क्यों दौड़ता हूँ रात को १२-१२ बजे और सुबह ४-४ बजे, सत्संग में क्यों भागता हूँ ? एक ही दिन में ३-३ जगह पूनम क्यों मनाता हूँ ? कभी अपने मन को पूछता हूँ कि तुझे कोई जरूरत है बेटा ? भीतर से संतोष मिलता है कि कुछ नहीं चाहिए। आपके रुपये-पैसे आपको मुबारक ! आपके फूल-हार आपको ही देता हूँ तो संतोष होता है। आपके फूलों की माला की भी मेरे मन में आवश्यकता नहीं दिखती। आपके रुपये-पैसे की मुझे तनिक भी आवश्यकता नहीं है। **आप 'जय-जय' बोलते हैं, यह आपकी साधुताई है। मुझे उसकी भी आवश्यकता नहीं है। मुझे तो मेरे मानव को महेश्वर के आनंद में देखने की आवश्यकता है।** विश्व-मानव चाहे मेरे मत अथवा अपनी-अपनी संस्कृति के अनुसार चलें या और दिशा में चलें लेकिन उनके अंदर जो छुपा है काश ! वह उन्हें दिख जाय, उनमें जो खजाना छुपा है- उन्हें मिल जाय, यही लालसा बनी रहती है।

(पृष्ठ ३ का शेष)

गालियाँ दीं। **विमूढा नानुपश्यन्ति** - विमूढ़ लोग अपने अमर चेतन स्वभाव को नहीं जानते।

पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः - केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले विवेकशील ज्ञानी ही मुझे तत्त्व से जानते हैं।

सत्संग से दो महान नेत्र मिलते हैं- एक तो सत्य-स्वरूप का संग और दूसरा विमल विवेक जागृत होता है। कर्म के प्रभाव से विवेक नहीं जगता, धन के प्रभाव से विवेक नहीं जगता किंतु हरि-गुरु की कृपा से निर्मल विवेक सजाग होता है। इसे पाने के लिए राजा लोग राज-काज छोड़ना पड़ता तो छोड़कर महापुरुषों के चरणों में जाते थे। तो आप भी पहुँच जाओ किन्हीं तत्त्ववेत्ता महापुरुष के श्रीचरणों में और उनके सान्निध्य में इन दोनों दुर्लभ नेत्रों को पाकर कर्म को योग बना लो।

रूप अनेक फिर भी एक-का-एक !

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

पंढरपुर (महा.) में शिवभक्त नरहरि सुनार रहता था। एक दिन एक साहूकार भागता हुआ उसके पास आया और बोला : ''ऐ ! ऐ नरहरि ! उठ-उठ भाई ! जल्दी कर।''

नरहरि सुनार : ''क्या है सेठजी ?''

साहूकार : ''विट्ठल भगवान को मैंने प्रार्थना की थी और उनकी दया से इस उम्र में मुझे बेटा हुआ है। मैंने मनौती मानी थी कि मुझे पुत्र होगा तो मैं विट्ठल को रत्नजड़ित कमरपट्टा बाधूँगा। अब तुम्हारा ही काम है, तुम ही हो जो मेरा मनोरथ पूरा कर सकोगे। दूसरे सुनारों पर मुझे भरोसा नहीं। तुम पहले नंबर के सुनार हो, ईमानदार हो और भगवान के भक्त हो।''

''पंढरपुर मंदिर में मैं नहीं जा सकता।''

''तुम्हें जितना पैसा लेना हो ले लो, पर ठाकुरजी की कमर का नाप ले आओ और सोने का पट्टा बना दो। हीरे मेरे घर में रखे हैं और सोना तुम जितना बोलो मैं ला देता हूँ।''

''मेरे भगवान तो शंकरजी हैं। मैं विट्ठल के मंदिर में क्यों जाऊँ ?''

वह मानता था कि शंकर भगवान ही भगवान हैं। विट्ठल की तरफ तो देखना ही नहीं चाहिए। जब वह बाहर निकलता तो कहीं विट्ठल के मंदिर की ध्वजा और कलश न दिख जाय, इसलिए सिर नीचे करके जाता था। इस प्रकार के उसमें संस्कार थे, इसलिए किसी भी कीमत पर वह विट्ठल के मंदिर में नहीं जा रहा था।

आखिर सेठजी को खुद नाप लेकर आना पड़ा। कमरपट्टा बना, विट्ठल को बाँधा गया तो पट्टा छोटा पड़ गया। उतारके लाये और नरहरि ने कारीगरी से बड़ा बना दिया परंतु अब की बार विट्ठल भगवान की मूर्ति को पट्टा बड़ा पड़ा। सेठ ने नरहरि को मंदिर में चलके नाप ले आने के लिए हाथा-जोड़ी की।

नरहरि ने कहा : ''मैं मंदिर में तो चलूँगा लेकिन एक शर्त है - मेरी आँखों पर पट्टी बाँध दो और दो आदमी मेरा हाथ पकड़के ले चलो। मैं विट्ठल की मूर्ति को छूकर, नाप लेकर बिल्कुल बराबर बना दूँगा।''

उसे ले गये वहाँ। नरहरि ने भावपूर्वक शिव की पूजा की थी तो शिवजी भक्त को अज्ञानी कैसे रहने देंगे ? उसकी पूजा फली थी। भले किसीने गलत संस्कार भर दिये थे किंतु जप तो गलती निकाल देता है। ज्यों वह विट्ठल भगवान की कमर का नाप लेने लगता है तो उसे महसूस होता है, ये तो शिवजी हैं ! त्रिशूल-कमंडलधारी शिवजी ! धीरे-से पट्टी खिसकायी तो देखा कि धत् तेरे की यह तो विट्ठल है ! गलती हो गयी। पट्टी खिसका के वह फिर नाप लेने लगता है तो फिर वही बात ! पट्टी हटाता है तो विट्ठल !!

''अरे ! ये क्या धोखा है ? पट्टी लगाता हूँ तो मेरे भोलेनाथ ! पट्टी खोलके देखता हूँ तो विट्ठल ! ओ शंभु ! तुम यह क्या कर रहे हो ?'' - ऐसा कहकर नरहरि ने पट्टी खोलकर देखा तो भगवान विट्ठल के ललाट पर उसे देदीप्यमान शिवलिंग के दर्शन हुए और हृदय में प्रेरणा हुई कि 'जो शिव हैं वे विष्णु हैं, जो विष्णु हैं वे शिव हैं।'

...तो भक्त बेचारा गलती कर सकता है लेकिन भक्त की भक्ति फलती है तो भगवान उसकी गलती रहने नहीं देते। कोई निमित्त बनाकर, कुछ-न-कुछ दैविक अनुभव कराके भक्त की नजर व्यापक कर देते हैं।

भगवान अपने भक्त का अज्ञान कैसे-कैसे मिटाते हैं ! धन्य हैं भगवान और भक्त !

संत नरहरि सुनार विरचित अभंग :

नाशिवंत देह मनाचा निश्चय।
सद्गुरूचे पाय हृदयीं असो ॥
कलीमध्यें फार सद्गुरू हा थोर।
नामाचा उच्चार मुखीं असो ॥

अर्थात् मेरे मन ने यह निश्चय कर लिया है कि यह देह नाशवान है। इसलिए सद्गुरु के श्रीचरण हृदय में धारण करने चाहिए। कलियुग में सद्गुरु की बहुत महिमा है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मुख से भगवन्नाम का उच्चारण होता रहे।

नाम फुकाचें फुकाचें। देवा पंढरीरायाचें ॥
नाम अमृत हें सार। हृदयीं जपा निरंतर ॥
नाम संतांचें माहेर। प्रेमसुखाचें आगर ॥
नाम सर्वांमध्ये सार। नरहरी जपे निरंतर ॥

अर्थात् पंढरीनाथ विट्ठल का नाम मुफ्त का है। भगवन्नाम-अमृत ही सार है। हृदय में इसका निरंतर जप करते रहो। भगवन्नाम संतों का मायका है, भगवत्प्रेम के अनुपम सुख का भंडार है। भगवन्नाम सबका सार है। नरहरि इसे निरंतर जपता है।

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी द्वारा भगवान की स्तुति

हे वैकुण्ठनाथ ! यह पापी, दुष्ट, असाधु एवं तीव्र गतिवाला चंचल मन आपकी कथा में कभी लगता नहीं; कामातुर हो हर्ष, शोक, भय आदि की दृष्टि से सदा दुःखी रहता है । ऐसे मन से मुझ जैसा नादान पुरुष आपकी गति को कैसे जाने ? हे अच्युत ! रस-विषय में लीन यह जिह्वा सदैव अतृप्त रहती हुई मुझे न जाने कहाँ खींचे ले जा रही है । शिश्न विषय की ओर खींचता है, त्वचा अपनी ओर ले जा रही है, उदर न जाने कहाँ ले जा रहा है । कान शब्द की ओर, नाक घ्राण-विषय की ओर तथा दृष्टि सुंदर रूप की ओर खींच रही है । ऐसे ही सभी कर्मेन्द्रियाँ भी जीव को अपनी-अपनी ओर खींच रही हैं। जिस प्रकार अनेक स्त्रीवाले पुरुष को सब स्त्रियाँ सौतिया-डाह से अपनी-अपनी इच्छापूर्ति के लिए कष्ट देती हैं, उसी प्रकार इस जीव को ये सारी इन्द्रियाँ सताती हैं । इस प्रकार अपने कर्मों से संसाररूपी वैतरणी नदी में पड़ा हुआ यह जीव अनेक जन्म लेता, खाता, डरता, डराता एवं अपने-पराये से मैत्री-वैर करता, मरता हुआ मूढ़ता को प्राप्त हो रहा है । हे भगवन् ! ऐसे इस मूढ़ जीव का यदि आप ही उद्धार करें तो हो सकता है । संसार की उत्पत्ति, पालन एवं नाश के आप ही कारण हैं । अतएव आपको इस मूढ़ जीव का उद्धार करने में अधिक परिश्रम नहीं हो सकता । हे आर्तबंधो ! आप तो सदा ही मूढ़ों पर, भोले-भाले जीवों पर बड़ी ही कृपा करते हैं, फिर जो आपकी सदा सेवा करते हैं, आपके भक्त हैं उन पर कृपा करें तो कौन-सी आश्चर्य की बात है ? हे परमेश्वर ! आपके चरित्रगानरूपी महाअमृत में मग्न मैं इस दुस्तर वैतरणी से नहीं डरता, किंतु जो मनुष्य आपके चरणारविन्द से विमुख हैं और माया-मोहित हो इन्द्रियों के सुख के लिए सांसारिक भार उठा रहे हैं, उन मूढ़ों के लिए मैं सोच करता हूँ । हे भगवन् ! यदि आप कहें कि तू अपनी मुक्ति को ग्रहण कर, इन सब सांसारिक प्राणियों को तत्त्वज्ञ मुनि लोग उपदेश देकर मुक्त करावेंगे, सो ठीक नहीं । क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि मुनिगण मुक्ति प्राप्त करने के लिए निर्जन वन में जाकर मौनव्रत धारण करते हैं और दूसरे पुरुषों को उपदेश द्वारा उद्धार करने की निष्ठा नहीं रखते । अतएव इन मूढ़ प्राणियों के उद्धार के लिए आपके अतिरिक्त कोई दूसरी शरण नहीं है । इनको छोड़कर मैं अकेला मोक्ष नहीं चाहता । यदि आप कहें कि ये सांसारिक प्राणी स्त्री-सुखादि से सुखी हैं, दुःखी और कृपण नहीं हैं तो भी ठीक नहीं है । क्योंकि जिस प्रकार एक हाथ की खुजली को दूसरे हाथ से खुजलाने से वह और भी बढ़ती है - घटती नहीं, उसी प्रकार ये मैथुनादि सुख गृहस्थों के लिए तृप्तिकारक नहीं, लिप्तकारक हैं । अतएव ये सांसारिक जीव सुखी नहीं, कृपण और दुःखी हैं । विद्वान लोग कामादि सुख को खुजली के समान ही सेवन से बढ़नेवाला रोग जानते हैं।

हे नाथ ! मौनव्रत, शास्त्र-श्रवण, तप, अध्ययन, स्वधर्म-पालन, युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या, एकांत में ध्यान, जप और समाधि - ये सभी कर्म मोक्ष के साधन हैं । किंतु इन सत्कर्मों को करनेवालों की अजितेन्द्रिय लोग हँसी करते हैं । दंभी लोग उनकी नकल करते हैं और अच्छे लोग उनकी प्रशंसा करते हैं । आपके अरूपी सत् और असत् रूप, वेद के द्वारा रचे गये हैं और बीजांकुर के समान अन्योन्याश्रय हैं । योगीजन दोनों ही रूपों को ढूँढ़ते हैं और योगदृष्टि से प्रत्यक्ष देखते हैं । जिस प्रकार वे काष्ठमंथन से अग्नि निकालते हैं, उसी प्रकार आपमें आपको प्रकट करके देखते हैं।

(क्रमशः)

प्रगति से परम

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मनुष्य को अपने आत्मा का आदर करना चाहिए। उसे आध्यात्मिक प्रगति का गला घोंट के लौकिक प्रगति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि लौकिक प्रगति होती हो और आध्यात्मिक प्रगति छूटती हो तो अपना अहित होता है। लौकिक प्रगति माने कि मैं बड़ा राजा हो गया... दूर-दूर तक नाम है, यश दिखता है लेकिन भीतर देखो तो चिंता, भय, शोक, छल-कपट... लौकिक लाभ दिखता तो बहुत है परंतु होता है आतिशबाजी के अनार जैसा, जबकि आध्यात्मिक लाभ दिखायी नहीं देता परंतु होता है सच्चे अनार जैसा; प्यास मिटाता है, तृप्ति-मिठास देता है, हृदय में शांति देता है और सात-सात पीढ़ियाँ तार देता है; कभी अपना साथ नहीं छोड़ता।

लौकिक लाभ के साथ आध्यात्मिक लाभ हो तो ही मानव का जीवन सार्थक बनता है। जो लौकिक लाभ को महत्त्व दे और आध्यात्मिक लाभ को जाने दे, उसके हृदय में होली जलती है।

जो आध्यात्मिक लाभ छोड़कर केवल लौकिक लाभ करते हैं, समझो उनके दोनों लाभ गये। परंतु आध्यात्मिक लाभ करने के लिए थोड़ा लौकिक लाभ जाता है तो कोई बात नहीं, लौकिक मान-बड़ाई जाती हो तो कोई दिक्कत नहीं किंतु आध्यात्मिक सज्जनता आनी चाहिए। आध्यात्मिक लाभ होता हो तो जगत की निंदा-स्तुति पैर के नीचे रखकर भी आध्यात्मिक लाभ लेना भाई ! आध्यात्मिक लाभ होगा तो लौकिक लाभ तो आपकी छाया बन जायेगा। छाया लेने जाना पड़ता है क्या ? आध्यात्मिक लाभ पूरा पा लिया तो लौकिक लाभ की क्या ताकत है कि पीछे-पीछे नहीं फिरे !

जिसे आध्यात्मिक लाभ की कद्र नहीं उसे शास्त्रकारों की सच्ची बात सोचनी चाहिए कि भाई ! गति होती है, गति से प्रगति होती है और प्रगति में सद्‌गति या दुर्गति हो वह अपने हाथ की बात है।

प्रकृति के मंगलकारी विधान से जीव की उत्क्रांति स्वतः होती रहती है। खनिज पदार्थ वनस्पति में गति पाते हैं, वनस्पति वर्ग पशु-आकृति में और पशुवर्ग मानव-आकृति में उत्क्रांत होता है। इसी तरह मनुष्य द्वारा जितने अंशों में दूसरों की सेवा होती है, उतने ही अंशों में मनुष्य धनबल, बुद्धिबल, जनबल व भोग-सामग्री से संयुक्त होता है, यही मानव की प्रगति है।

जब मानव इन बलों का उपभोग करते हुए अभिमान करता है, तब बल का दुरुपयोग होता है और दुरुपयोग से दुर्गति होती है। अगर वह इन बलों का, भोग-सामग्री का उपयोग करके दूसरों की सेवा करता है, दूसरों के आँसू पोंछता है तो उसकी सद्‌गति होती है।

प्रवृत्ति में गति है। गति इंद्रियों में होती है, गति मन में होती है, गति बुद्धि में होती है। गति को जाननेवाला अपना आत्मा एकरस है। अपनी बचपन की बुद्धि और अभी की

विकारों पर नियंत्रण हेतु

अपने में जो कमजोरी है, जो भी दोष हैं उस कमजोरी को, उन दोषों को निम्न मंत्र द्वारा स्वाहा कर दो। दोषों को याद करके मंत्र के द्वारा मन-ही-मन उनकी आहुति दे डालो, उन्हें स्वाहा कर दो।

मंत्र : **ॐ अहं तं जुहोमि स्वाहा।** 'तं' की जगह पर विकार या दोष का नाम लें।

जैसे : **ॐ अहं वृथावाणीं जुहोमि स्वाहा।**
ॐ अहं कामविकारं जुहोमि स्वाहा।
ॐ अहं चिन्तादोषं जुहोमि स्वाहा।

जो विकार तुम्हें आकर्षित करता है उसका नाम लेकर मन में ऐसी भावना करो कि 'मैं अमुक विकार को भगवत्-कृपा में स्वाहा कर रहा हूँ।'

इस प्रकार अपने दोषों को नष्ट करने के लिए मानसिक यज्ञ अथवा वस्तुजन्य (यज्ञ-सामग्री से) यज्ञ करो। इससे थोड़े ही समय में अंतःकरण पवित्र होने लगेगा, चरित्र निर्मल होगा, बुद्धि फूल जैसी हलकी व निर्मल हो जायेगी, निर्णय ऊँचे होंगे। थोड़े-से इस श्रम से ही बहुत लाभ होगा। आपका मन निर्दोषता में प्रवेश पायेगा और ध्यान-भजन में बरकत आयेगी।

गति की ओर...

बुद्धि में फर्क है परंतु बचपन की बुद्धि को जो जानता था, वो ही मेरा प्यारा अभी की बुद्धि को जानता है। अच्छे काम किये हों तो प्रगति में सद्‌गति होती है और गलत काम किये हों, परदेश में पैसा जमा किया हो तो दुर्गति होती है।

बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय करके, ईश्वर को सिर पर रखके प्रगति करे तो सद्‌गति हो और अहम् को आगे रखकर करे तो... रावण भी कितना बड़ा था, हिरण्यकशिपु कितना बड़ा था, कंस कितना बड़ा था परंतु जितने बड़े उतने खोटे हुए।

गति तो होती है पर गति में बाह्य प्रगति के साथ-साथ सद्‌गति हो। सद्‌गति परम गति करवाती है और केवल प्रगति तो शक्ति का ह्रास करती है। सत्ता में प्रगति, वाहवाही में प्रगति... फिर शक्ति का ह्रास और दुर्गति। यह रावण का मार्ग है। शक्ति तो है लेकिन तुम्हारी प्रवृत्ति शक्ति का ह्रास करनेवाली है तो उसका अंत दुर्गति होता है। शक्ति है और शक्तिदाता की प्रीति पाने के लिए शक्ति का सदुपयोग करता है तो इससे सद्‌गति, परम गति होती है।

जिस प्रगति में अहं पोसने की, संग्रह करने की, लोगों को त्रास देने की प्रवृत्ति होती है, उससे दुर्गति होती है परंतु जिस प्रगति में दूसरों की उन्नति हो, भगवन्मार्ग पर जानेवाले लोगों की सेवा हो उस प्रगति से सद्‌गति होती है और सद्‌गति परम गति करवाती है। परम गति अर्थात् सुखोपभोग से विरक्ति और आत्मा-परमात्मा में अनुरक्ति, परमेश्वर में दृढ़ भक्ति।

इस तरह सुखोपभोग की सामग्री प्राप्त करना प्रगति है। सुखभोग की सामग्री, शक्ति, सम्पत्ति का अभिमान लाकर दुरुपयोग करने से दुर्गति होती है और इनके द्वारा सेवा करने से सद्‌गति होती है। सेवा के फल से विरक्त होने तथा परमेश्वर में अनुरक्ति होने से परम गति होती है।

ऐसे परम गति के मार्ग पर जानेवाले राजा जनक ने कथा का आयोजन करवाया। उस कथा में अजगर के रूप में आये राजा अज ने अष्टावक्रजी से कहा :

'अनेक नीच योनियों में मैं भटका, मेरी दुर्गति हुई पर इस कथा में आये लोगों के दर्शन की पुण्याई, आप जैसे संत के भगवान को स्पर्श करके आते वचनों से मेरे पाप जले और अब मेरी प्रगति, सुप्रगति हुई; मेरी सद्‌गति हुई। सद्‌गति में से मेरी परम गति के दिन अब आयेंगे। यह सब इस सत्संग का आभार है।' इसलिए कहते हैं :

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनी आधी।
तुलसी संगत साध की हरे कोटि अपराध ॥

करोड़ों पाप जलानेवाली संतों की संगति है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा संतों की सेवा करके अपना भाग्य बनाते थे। गुरु की, संतों की सेवा से बाहर से भले कुछ मिला नहीं दिखता हो, पर अंदर से जो मिलता है वह परम गति के द्वार खोल देता है।

लांछन क्यों?

भाद्रपद की पूर्णिमा का दिन है, पवित्र सलिला साबरमती के तट पर स्थित आश्रम में देश के विभिन्न भागों से पूनम व्रतधारी शिष्य दर्शन-सत्संग के लिए आये हुए हैं। बापूजी जीवन में व्रत-नियम की महत्ता बताने के बाद अपनी हृदयस्पर्शी अमृतवाणी से उनको झकझोरते हुए अपने विस्मृत आत्मस्वरूप में जगाने का प्रयास कर रहे हैं। जाने किसे कौन-सा शब्द लग जाय और वो जग जाय अपने वास्तविक स्वरूप में। अपने वास्तविक आत्मस्वरूप में जगे हुए परम पूज्य बापूजी कह रहे हैं : आप कोई गलती नहीं करते हैं, कोई पाप नहीं करते हैं फिर भी कभी-न-कभी आप पर लांछन लगना ही चाहिए - यह प्रकृति की व्यवस्था है। 'मेरे में गलती नहीं है, मैंने ठीक किया' - यह भी एक गलती है। 'मैं सही हूँ' - यह सोचना गलत है।

जो आप नहीं हैं उसे आप 'मैं' मानते हैं और जो आप हैं उसका पता नहीं है, यह मुख्य गलती आप कर रहे हैं। कोई गधे को मार दे, कुत्ते को मार दे, मनुष्य को मार दे तो कहेंगे कि यह पाप है किंतु आप तो अपने ब्रह्म-परमात्मा का ही गला घोंट रहे हैं ! जिसने ब्रह्महत्या कर ली, जो अपनी आत्मा का ही गला घोंट रहा है उसने और किसका गला नहीं घोंटा ? उसने और कौन-सा अपराध नहीं किया ? वह अपने आपका ही शत्रु है।

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता। (रामचरित. अयोध्या कां. : ९१.२)

कोई किसीको सुख-दुःख नहीं देता। हम दुःख भोगते हैं तो वह अपनी ही गलती का फल होता है।

सच्चाई व ईमानदारी का फल

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

संवत् १५०५ की बात है :

१० वर्ष के बालक भानूदास को उसके पिता ने डाँटकर घर से निकाल दिया। भानूदास गये जंगल में व भगवान सूर्य के सामने रो-रोकर प्रार्थना करने लगे : 'हे भगवान सूर्यदेव ! पिता ने डाँटकर निकाल दिया। घर में मेरा कोई नहीं है। तुम तो मेरे हो न ? हो न ? हो न ?...' बालक सूर्यदेव को पुकारता रहा।

सूर्यनारायण कब तक चुप बैठते । ब्राह्मण के वेश में आकर कहा : ''ले बेटा ! दूध पी ले।'' बच्चे को भरपेट दूध पिलाया, सिर पर हाथ रखा और कहा : ''चिंता मत कर।''

१० दिन तक भगवान सूर्य ब्राह्मण के रूप में दूध पिलाते रहे । माँ ने तो अपने शरीर से दूध पिलाया होगा किंतु ब्राह्मण ने तो अपने प्रेमामृत से दूध पिलाया । १० वर्ष का वह बालक बैठे, नाम-जप करे, संकीर्तन करे तो ध्यान लग जाय।

घर में माता-पिता बेटे के बिना तरस रहे थे । वे भी सूर्यनारायण की उपासना करते, उनको जल चढ़ाते तथा रो-रोकर भगवान सूर्य से प्रार्थना करते थे। १० दिन के बाद सूर्यदेव ने भानूदास से कहा :

''बेटा ! तुम्हारे पिता मेरे भक्त हैं । वे तुम्हारे लिए तड़प रहे हैं। तुम घर जाओ। तुम्हें मेरी भक्ति प्राप्त होगी। सुखी रहो।''

बेईमान आदमी को फायदा तुरंत होता है, बाद में बड़ी पीड़ा होती है किंतु ईमानदार आदमी को प्रारंभ में थोड़ा नुकसान होता है, अंत में वह परम पद तक की यात्रा करता है।

बेटे को वापस आया देख माता-पिता बड़े प्रसन्न हुए । पिता ने उत्सव मनाया । समय पाकर भानूदास शादी की उम्रलायक हुए। शादी हो गयी लेकिन भगवान सूर्य की कृपा से भानूदास को विषय-विकारों में रुचि नहीं हुई।

समय आने पर माता-पिता ने स्वर्ग का रास्ता लिया। घर की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो रही थी, पर भानूदास को संसार में रुचि नहीं थी। अंत में जातिवालों ने मिलकर कुछ पैसे इकट्ठे किये और भानूदास से कहा : ''तुम कपड़े की दुकान कर लो । हमें ब्याज नहीं चाहिए, हमारा मूलधन वापस कर देना । अपनी घर-गृहस्थी चलाओ।''

भानूदास : ''मैं दुकान पर तो बैठूँगा परंतु झूठ नहीं बोलूँगा।''

दुकान पर ग्राहक आते, भानूदास उनसे कहते : ''हमने इतने में खरीदा है और इतने में बेचेंगे। इतना नफा होगा। खरीदना है तो खरीदो नहीं तो जाओ।''

'नहीं तो जाओ' कहते तो ग्राहक चले जाते कि 'कैसा दुकानदार है ?' दूसरे दुकानदार भी उनका मजाक उड़ाते कि ''धंधा करना आता है ? ग्राहक को तो दुगना भाव बताना चाहिए। फिर थोड़ा कम, थोड़ा कम करते-करते मुर्गा काटना है न!''

भानूदास कहते : ''ग्राहक और मुर्गा ! इनमें मेरा विट्ठल है, सबमें मेरा पांडुरंग है। जो सबका भला सोचता है, भगवान उस पर प्रसन्न

होते हैं। जो दूसरों को ठगता है, उसकी बुद्धि संसार की सुविधा तो देती है किंतु वह ८४ लाख योनियों में ठगा जाता है न ? मैं ऐसा नहीं करूँगा।''

''तो फिर कर भक्ति।''

भानूदास की बड़ी बदनामी होने लगी। भानूदास सोचते, मैं सत्य के कारण बदनामी सहता हूँ। लोग तो असत्य के कारण बदनाम होते हैं।

बेईमान आदमी को फायदा तुरंत होता है, बाद में बड़ी पीड़ा होती है किंतु ईमानदार आदमी को प्रारंभ में थोड़ा नुकसान होता है, अंत में वह परम पद तक की यात्रा करता है।

दुकानदारों के मखौल के पात्र बने भानूदास के प्रति धीरे-धीरे समाज के लोगों को हुआ कि ये तो सत्यवादी हैं। अन्य कपड़ा दुकानदार कहते हैं कि हम १ रुपये में देंगे जबकि भानूदास कहते हैं कि हम १० आने में लाये हैं १२ आने में देंगे। भानूदास २ आना ही नफा लेते हैं जबकि दूसरे तो ६ आना नफा लेते हैं। धीरे-धीरे लोग भानूदास की दुकान से कपड़ा लेने लगे। उनकी ऐसी प्रतिष्ठा हुई कि भानूदास तो व्यापारी के रूप में एक संत हैं, भक्त हैं। भानूदास की दुकानदारी बढ़ी ; धन बढ़ने लगा।

ऐसा ही एक व्यक्ति था गोधरा (गुज.) में। वह भी ऐसे ही कहता कि 'इस भाव में आया है इस भाव में दूँगा।' शुरू में उसकी भी बड़ी बदनामी हुई। १००० रुपये भरने के लिए भी वह चिंतित था। बाद में उसकी ८-१० दुकानें हो गयीं। यदि ठगी से दुकानदारी चलाता तो उसकी १-२ दुकानें होतीं, ईमानदारी से चलायी तो ८-१० दुकानें हो गयीं ! सच्चाई में कितनी ताकत है ! अभी कुछ समय पहले ही उसका शरीर शांत हुआ है।

कई लोफर लड़के उसकी दुकान पर आये और अच्छे सेल्समेन बन गये। मेरा मित्र था लेकिन मेरे से ज्यादा उम्र (७०-७२ वर्ष) का था। दयालदास नाम था।

भानूदास का बड़ा नाम हो गया। मंगलवार को कहीं, शनिवार को कहीं, किसी वार को और कहीं इस प्रकार की जो साप्ताहिक दुकानें लगती हैं, उनमें वे भी व्यापारियों के साथ घोड़े पर सामान लादकर जाते।

नाम होने से छोटे-छोटे व्यापारी भानूदास से ईर्ष्या करने लगे। एक बार सब व्यापारी रात को किसी धर्मशाला में ठहरे थे। भानूदास को कीर्तन की ध्वनि सुनायी पड़ी, वे उधर चल पड़े। बाकी के व्यापारियों ने उनकी कपड़े की गठरी उठाकर किसी नाले में डाल दी और घोड़े को दो चाबुक मारकर भगा दिया कि 'अब करे भानूदास विट्ठल, विट्ठल...।'

विट्ठल ने भी चोरों को प्रेरणा कर दी कि धर्मशाला में व्यापारी आये हैं। चोर गये, वहाँ सबके कपड़े-घोड़े लूट लिये और साथ में उनको पीटा भी।

प्रभात में भानूदास कीर्तन से लौटे तो एक युवक रास्ते में खड़ा मिला कि ''भानूदासजी ! यह आपका घोड़ा है न ?''

भानूदास : ''भाई ! तुमको कहाँ से मिला ?''

''यह घूम रहा था। मैंने पहचान लिया कि भानूदासजी का घोड़ा है। मैं एक प्रहर से यहाँ खड़ा हूँ।''

भानूदास घोड़े पर बैठकर धर्मशाला पहुँचे तो पूरी बात का पता चला। तब तक किसीने नाले में से, जो कि बरसाती नाला होने के कारण सूखा हुआ था, कपड़े की गठरी भी लाकर पकड़ा दी। भानूदास कहने लगे : ''हे जगतनियंता ! हे न्यायकारी ! हे सभीके दिलों के साथी, कर्म-नियामक, फलदाता, दीनबंधु, दीनानाथ, भक्तवत्सल...'' कहते-कहते उसीमें डूब गये। भानुदास को एहसास हुआ, 'जो सच्चाई से प्रभु के रास्ते चलता है उसका ऐहिक कार्य भी प्रभु सँभाल लेते हैं, सँवार लेते हैं। विट्ठल ! हम तेरा थोड़ा-सा कीर्तन करते हैं और तू हमारा कितना ध्यान रखता है ! उन व्यापारियों ने मेरे लिए गड़बड़ की तो उनके घोड़े और माल-सामान तो ले ही लिये, साथ ही बराबर पिटाई भी करवा दी। मेरे लिए तुझे इतना-इतना करना पड़ा ! धिक्कार है ऐसे धंधे को... अब मैं धंधा-वंधा नहीं करता। अब तो मैं तेरा और तू मेरा, मेरे विट्ठल !' और भानूदास सब छोड़ के भगवान की भक्ति में लग गये। यही भानूदास संत एकनाथजी के प्रपितामह थे। भानूदास के पुत्र थे चक्रपाणि, चक्रपाणि के पुत्र हुए सूर्यनारायण, सूर्यनारायण के पुत्र हुए श्री एकनाथजी महाराज। एकनाथजी ने अपने अभंगों में गाया है कि कुल-परंपरा से भक्तों के कुल में हमारा जन्म हुआ। मैं भाग्यशाली हूँ कि ऐसे प्रपितामह के कुल में हमारा जन्म हुआ।

ॐ हरि हरि शांति...

हम तेरा थोड़ा-सा कीर्तन करते हैं और तू हमारा कितना ध्यान रखता है ! धिक्कार है ऐसे धंधे को... अब मैं धंधा-वंधा नहीं करता। अब तो मैं तेरा और तू मेरा, मेरे विट्ठल !

भगवन्नामों का माधुर्य व रहस्य

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

सांसारिक कष्टों के निवारण का सुगम उपाय है - भगवन्नाम का आश्रय। भगवन्नाम के अर्थ में मन तन्मय हो जाय तो हृदय पुलकित हो जाता है। भगवन्नाम संपूर्ण मंगलों में परम मंगलकारी है व भक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला है। भगवन्नाम के समान कल्याणकारी कोई वस्तु नहीं, कोई तप नहीं, कोई व्रत नहीं।

विभिन्न सम्प्रदायों ने भगवान के अनेकों नाम खोजे हैं। पारसियों ने भगवान के चौबीस नाम खोजे। इस्लाम ने प्यारे प्रभु के अल्लाह, रहमान, रहीम आदि निन्यानवे नाम खोजे। 'रहमान' माने जो रहमत करनेवाला है, 'रहीम' माने जो परम दयालु सत्ता है और 'करीम' माने जो अति उदार है। उनकी माला के दाने भी निन्यानवे होते हैं। मुसलमानों में कार्य शुरू करने से पहले यह मंत्र बोलने का विधान है :

बिस्मिल्ला हि र् रहमानि र् रहीमी।

'मैं अल्लाह के नाम से शुरू करता हूँ।'

किंतु भारतीय संस्कृति ने तो भैया हद कर दी ! भगवान के हजार-हजार नाम (जैसे - श्रीविष्णुसहस्रनाम, श्रीशिव-सहस्रनाम आदि) खोजे।

कोई बोले, भगवान एक हैं तो भगवान का एक ही नाम काफी है, फिर कृष्ण, राम, शिव, गोविंद, माधव इत्यादि इतने-इतने नाम क्यों ?

भगवान तो एक हैं परंतु उनके गुण, लीला, प्रभाव एवं नाम अनेक हैं। भगवान के एक-दो नाम लेने से आप लोग उनकी पूरी महिमा से वाकिफ नहीं हो सकते। डॉक्टर कह देनेमात्र से भैया ! काम नहीं चलता। डॉक्टर तो है किंतु कौन-सा डॉक्टर है ? एम.बी.बी.एस. है, एम.डी. है, आर.एम.पी. है, सर्जन है, आँख का विशेषज्ञ है, नाक का विशेषज्ञ है, दिमाग का विशेषज्ञ है, 'थीसिस' लिखनेवाला पीएच. डी. है... ऐसा उनकी उपाधि के अनुसार बोलना पड़ता है।

अनंत नाम हों फिर भी सारे नाम मिलकर भगवान के गुण, सामर्थ्य, भाव, करुणा आदि का वर्णन नहीं कर सकते। हजार नाम, लाख नाम, करोड़ नाम नहीं... सारे नाम तेरी सत्ता से पैदा होते हैं फिर भी तू अनामी है तथा सारे नामों की लीला तेरी है।

अब नाक और कान, जिसमें लीट, मैल पड़ा हुआ है, उसके विशेषज्ञ के लिए अलग-अलग उपाधि है तो सारे विशेषज्ञों को जो बल, ओज, जीवन देता है उसके कितने नाम हो सकते हैं !

भगवान के एक-एक नाम से उनके एक-एक गुण, एक-एक लीला, एक-एक रहस्य प्रकट होते हैं और हजार-हजार नामों से भगवान की हजार-हजार लीलाएँ, गुण, माधुर्य प्रकट होते हैं।

जैसे राम कह दिया। 'राम' माने जो रोम-रोम में रम रहा है; रोम-रोम में जो भगवत्-चेतना रम रही है, जो हमारी रक्षा करती है, हमें प्रेरणा देती है, जो सूर्यतत्त्व-चंद्रतत्त्व को जाग्रत करती है वह 'राम' है परंतु इससे भगवान की महिमा का पूरा विस्तार नहीं हुआ।

फिर कहा कृष्ण। 'कृष्ण' अर्थात् जो कर्षित कर दे, आकर्षित कर दे, आनंदित कर दे उस चैतन्य सत्ता का नाम है कृष्ण।

'शिव' माने जो कल्याणस्वरूप हैं, कल्याण करते हैं। अकल्याणकारी वेश में होते हुए भी शिव कल्याणकारी हैं।

ऐसे ही दामोदर - 'दाम' माने रस्सी 'उदर' माने पेट। रस्सी से बँधा है पेट जिनका। माता यशोदा रस्सी से भगवान के पेट को ओखली के साथ बाँधती है, इसलिए नाम पड़ा 'दामोदर'। जीव बंधन में है तो मुक्ति के लिए लालायित है और भगवान मुक्त हैं फिर भी बंधन के लिए लालायित हैं !

अहं भक्त पराधीनः।

जो भक्त के वात्सल्य से भक्त के आगे लाचार हो जाने को भी तैयार हो जायें और भक्त के भावों को पुष्ट कर दें उनका नाम है दामोदर।

भगवान को किसीने माँ के रूप में नवाजा है तो यह हिन्दू संस्कृति ही है। 'माँ' मतलब, जो बेटे के अवगुण-

दोष देखे बगैर बेटे का पोषण करे और बेटे की अँगड़ाई मात्र से ही प्रसन्न हो जाय। इसलिए ऋषियों ने भगवान को माँ के रूप में भी पूजा है।

एक ही माता के रूप में नहीं, अनेक रूप हैं उनके : काली माता, लक्ष्मी माता, दुर्गा माता, सरस्वती माता... जो दुष्टों के लिए क्रोध की मूर्ति है उसे चंडिका कहते हैं। दुर्निग्रह स्वरूप होने से उसे दुर्गा कहते हैं। वह ओंकार की सारभूत शक्ति है, इसलिए उसे उमा कहते हैं। व्यक्तियों के लिए परम पुरुषार्थरूप होने से उसे गायत्री कहते हैं।

(श्रीयोगवासिष्ठ महारामायण)

विद्या का विभाग संपन्न करती है तो तू माँ सरस्वती, संपदा के विभाग में सहायता करे तो तू माँ लक्ष्मी, तप-विभाग को पोषित करे तो तू माता पार्वती। इस हिन्दू संस्कृति के आगे सिर झुक जाता है, हृदय झुक जाता है, दिल बिक जाता है, ऐसी संस्कृति में जन्म हुआ है आपका! आप सभीको बधाई हो।

जो दुष्टों के लिए क्रोध की मूर्ति है उसे चंडिका कहते हैं। दुर्निग्रह स्वरूप होने से उसे दुर्गा कहते हैं। वह ओंकार की सारभूत शक्ति है, इसलिए उसे उमा कहते हैं। व्यक्तियों के लिए परम पुरुषार्थरूप होने से उसे गायत्री कहते हैं।

संध्या करनेवालों ने संध्या के समय भगवान के चौबीस नामों के उच्चारण की व्यवस्था की है : केशव, नारायण, माधव, गोविंद, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषिकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नरसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, श्रीहरि व श्रीकृष्ण।

अच्युतं केशवं रामनारायणं
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजेत्॥

क्या मनोहारी प्रार्थना है!

अच्युत : हम कुर्सी से च्युत हो जायेंगे, शरीर से च्युत हो जायेंगे परंतु जो हमारे हृदय से च्युत नहीं होते, जो अपनी महिमा से कभी च्युत नहीं होते, उन परमात्मा का नाम है अच्युत।

केशव : 'क' माने ब्रह्मा, 'श' माने शिव, 'व' माने विष्णु ; ब्रह्मा, विष्णु, महेश के हृदय में भी जो बस रहा है। एक-एक ब्रह्मांड के एक-एक ब्रह्मा, विष्णु और महेश होते हैं, ऐसे ही अनंत-अनंत ब्रह्मांडों के अनंत-अनंत ब्रह्मा, विष्णु और महेश का जो आत्मा होकर बैठा है वो केशव है।

नारायण : 'नर' अर्थात् ले जानेवाला, अगुवा। जो नेता की तरह दूसरों को चलाये, जो पशुओं को चलाये, पक्षियों को चलाये, उसको बोलते हैं 'नर'। नर के समूह को नार कहते हैं। नर में पूरी स्त्री जाति, पुरुष जाति भी आ गयी। नरों के समूह में जो चेतना है, चलाने की योग्यता है, ज्ञान है, वह जिसकी सत्ता से है वह है नारायण।

इसी तरह चीनियों ने अपने ढंग से उसी परमात्मा-भगवान का नाम 'ताओ' खोजा। 'ताओ' माने जो सारी सृष्टि में तना हुआ है, ओत-प्रोत है। जो सारे कर्मों का नियामक है, जो सबको विकसित करता है, जो विश्वव्यापी सत्ता है वह है ताओ।

सिख मत ने कहा : **बोले सो निहाल सत्श्री अकाल।** 'सत्' माने जो पहले था, अभी है तथा बाद में भी रहेगा। 'श्री' माने साफ-सुथरा। भगवान साफ-सुथरे हैं, सुव्यवस्थित हैं। 'अकाल' माने जो काल की सीमा से परे हैं।

नाथ संप्रदाय ने कहा : **अलख निरंजन।** माने जो इन्द्रियों से लखा न जाय।

भगवान के हजार-हजार नामों में एक नाम है 'गुरु'। 'गुरु' मतलब जो लघु जीवन से, लघु जन्मों से, लघु कर्मों से, लघु मान्यताओं से उन्नत करके बड़े प्रकाश में, बड़े ज्ञान में और मुक्ति की ओर ले जाय। जो ऐसा सेवाकार्य करते हैं उन महापुरुषों को गुरु कहते हैं। गुरु में भी कई तरह के गुरु होते हैं। जैसे - विद्या गुरु, परम गुरु, कुल गुरु। परम गुरु माने जिनको परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार हुआ है, जो पूर्णतः अनुभवसंपन्न महापुरुष हैं। उन्हींको सद्गुरु भी कहते हैं।

पुरुषोत्तम : नरों में जो उत्तम हैं वे हैं पुरुषोत्तम।

गणपति : गणानां पतिः इति गणपतिः। 'गणों के जो पति हैं अर्थात् इंद्रियों के जो स्वामी हैं वे हैं गणपति।'

वासुदेव : जैसे शक्कर सब मिठाइयों में बसी है, ऐसे ही सारे ब्रह्मांडों में तुम बसे हो। इसलिए तुम्हारा नाम है वासुदेव।

हरि : जो अपने भक्त का रोग-शोक, पाप-ताप व अपनी वैष्णवी माया का प्रभाव हर ले और अपना आत्मवैभव उसके हृदय में भर दे, उस परमात्मा का नाम है हरि।

'ॐ' : अखिल ब्रह्मांडों में व्याप्त जो सत्ता है वह है ॐ।

भगवान का एक नाम है **'भक्तवत्सल'**, क्योंकि भक्त के लिए भगवान का वात्सल्य प्रकट हो जाता है।

(शेष पृष्ठ १९ पर)

ज्ञान का मुकुट जिसके सिर पर है, वह ऐसे अलौकिक सौन्दर्य से शोभने लगता है कि स्वयं सौन्दर्य-निधान, सर्वशक्तिमान परमात्मा भी उससे मिलने के लिए लालायित रहता है।

वास्तविक सौन्दर्य क्या है ?

विश्व का प्रत्येक प्राणी सौन्दर्य की ओर स्वाभाविक ही आकृष्ट हो जाता है। मूर्ख हो या विद्वान, सभी सौन्दर्योपासक हैं। हर मनुष्य अपने सौन्दर्य की वृद्धि का प्रयास करता है। वर्तमान में देश की काफी सम्पत्ति केवल सौन्दर्यवर्धक वस्तुओं पर व्यय हो जाती है। इन सौन्दर्य-प्रसाधनों से बाह्य सुन्दरता भले थोड़े समय के लिए दिखे परंतु वास्तविक सौन्दर्य नहीं बढ़ता। यह सदैव स्मरण में रखें कि बाह्य सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य नहीं है। जो मनुष्य क्रीम, पाउडर, वस्त्रादि नाना प्रकार के श्रृंगार से युक्त होकर अपने को सुन्दर मान बैठते हैं, वे भारी भूल में हैं। वास्तव में असली सौन्दर्य का पता तो बहुतों को है ही नहीं।

किसी विद्वान ने कहा : 'श्रृंगार वही करता है जिसको अपने आंतरिक सौन्दर्य पर विश्वास नहीं है।' क्योंकि इस सृष्टि में ईश्वर द्वारा रचित कोई भी वस्तु, व्यक्ति और क्रिया असुन्दर है ही नहीं। उसमें भी मनुष्य तो परमेश्वर की सुन्दरतम कलाकृति है। ईश्वर कोई साधारण कलाकार नहीं हैं, जिनकी रचना पर हम नाक-भौंह सिकोड़ सकें। वे ही परम सुन्दर हैं और उनके द्वारा निर्मित यह सृष्टि भी सुन्दर है। जो कुछ असुन्दरता दृष्टिगोचर है वह जीव-कल्पित मान्यताओं से ही है।

अष्टावक्रजी का शरीर आठ जगहों से टेढ़ा था, जिसे देखकर कुछ लोग उनकी हँसी उड़ाते थे, पर उनका जीवन इतना पवित्र और सुन्दर था कि उससे आकृष्ट होकर जनक जैसे महाराजा भी उनके शिष्य बन गये। जो लोग अपनी बाह्य असुन्दरता को अभिशाप मानते हैं या परेशान हैं, उन्हें अष्टावक्रजी के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। सुकरात भी बाहर से कुरूप थे, फिर भी तत्त्वज्ञान-सौन्दर्य से कितने सुन्दर!

मानव चाहे तो खुद को इतना सुन्दर बना सकता है कि सारा संसार उसकी ओर आकृष्ट हो उसके पीछे-पीछे चलने लगे। यही नहीं, स्वयं भगवान भी उसके पीछे-पीछे चलेंगे; क्योंकि वे स्वयं सकल सौन्दर्य-सम्पन्न होकर भी सौन्दर्य के ही उपासक हैं।

इसके लिए आवश्यक है कि आपका हृदय सुन्दर हो अर्थात् दैवी सद्गुणों के आभूषणों से विभूषित हो। क्या आपने कभी देवी, देवताओं, महात्माओं और महापुरुषों के चित्र ध्यान से देखे हैं ? उनके मुखमंडल से तृप्ति, शांति, मुस्कराहट स्वाभाविक ही झलकती है। उनके चेहरे की सरलता, सरसता, मधुरता पर मानव-मन बार-बार निछावर होने लगता है। उनका मुखमंडल कितना सुन्दर, सुखदायक और आँखों को प्रिय लगता है ! उनका यह सौन्दर्य उनके हृदय की सुन्दरता के कारण ही है।

जिसने प्रेम, दया, त्याग, सज्जनता, ईमानदारी, सदाचार, संयम, सौम्यता, निष्कपटता, मधुर भाषण, दान, प्रसन्नता, भगवद्विश्वास, भगवत्स्मरण इत्यादि दैवी सद्गुणों से अपने हृदय को सुन्दर बना लिया है, उसका मुखमंडल आंतरिक सौन्दर्य के प्रभाव से स्वाभाविक ही आकर्षक बन जाता है क्योंकि इन सद्गुणों में गजब की आकर्षण-शक्ति है।

अपने जीवन में त्याग का सद्गुण लाइये। व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग करके निष्काम भाव से सबकी सेवा कीजिये। जो स्वार्थरहित होकर संसार की सेवा करता है, उसकी माँग सबको होती है। स्वार्थरहित सेवक के सभी दास हो जाते हैं, पर स्वार्थी मनुष्य स्वामी होकर भी सबका दास बन जाता है।

इसके अतिरिक्त सुन्दर विचारों व मधुर मानसिक भावों से भी हमारे सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है। जो व्यक्ति अपने विचारों को सुखद व सुन्दर बनाने का एवं भावों को मधुर बनाने का अभ्यास करता है, वह चाहे कितना ही कुरूप हो, मोहक आकर्षण-शक्ति से सम्पन्न हो सकता है।

सत्पुरुषों के, महान पुरुषों के संग से ये गुण

ढूँढ़ रहा है तू जिसे वही तो तेरे साथ है

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जो लोग कहते हैं, 'I am very busy. (मैं बहुत व्यस्त हूँ।) यह करना है, वह करना है...' और कथा-कीर्तन, सत्संग नहीं सुनते, वे तो बुद्धू हलवाई जैसा काम करते हैं।

बुद्धू हलवाई का धंधा नहीं चला तो उसने धोबी का धंधा शुरू कर दिया। एक दिन शाम के समय वह गधा भगाता हुआ जा रहा था। दोस्तों ने पूछा : ''कहाँ जा रहे हो ?''

''अरे, अभी फुरसत नहीं है।''

आगे जाने पर दूसरे लोगों ने पूछा : ''अरे, कहाँ जाते हो ?''

''I have no time, excuse me. (क्षमा करना, मेरे पास समय नहीं है।)''

आखिर एक पुराने साथी ने पूछा : ''तुम कहाँ जा रहे हो ? क्या काम है ?''

''मेरे पास एक ही गधा था। वह खो गया है, उसको खोजने जा रहा हूँ।''

''जिस पर तुम बैठे हो वह किसका है ?''

बुद्धू बोला : ''यार... धत् तेरे की ! जिस पर बैठकर खोजने जा रहा हूँ वही तो मेरा गधा है !''

जैसे बुद्धू हलवाई जिस पर बैठा था उसीको खोजने जा रहा था, ऐसे ही जिस चैतन्य सुखस्वरूप आत्मा की सत्ता पर मन बैठा है उसको भूलकर 'यह करूँ तो सुखी हो जाऊँ... इतना करूँ तो सुखी हो जाऊँ...' ऐसा सोचकर मन बाहर भटक रहा है। अतः मन को समझाओ कि 'भैया ! जिसकी शादी नहीं हुई वह भी दुःखी है और शादीवाला भी दुःखी है। जिसके पास धन नहीं है वह निर्धनता से दुःखी है और जिसके पास धन ज्यादा है वह उसे सँभालने की चिंता में दुःखी है। कोई बदली से दुःखी है तो कोई बदली के लिए दुःखी है। कोई पत्नी से दुःखी है तो कोई पत्नी के लिए दुःखी है। कोई बच्चों से दुःखी है तो कोई बच्चों के लिए दुःखी है।'

नानक दुखीआ सभु संसारु।
सुखी बसै मसकीनीआ आपु निवारि तले।

जो अहंकाररहित है, जिसको किसी संत या सद्गुरु का प्रसाद मिल गया है, वही संतुष्ट है, सुखी है। कितना भी धन, सत्ता, वैभव मिला; कहीं भी घूमे देश-परदेश में, अरे ! स्वर्ग में भी घूमे तो भी सब दुःख दूर नहीं होते हैं। सब दुःख तो तब दूर होते हैं जब सब जिससे होता है, उस परमात्मा में मन लगाने की कला आ जाय। उसमें मन लगाना परमात्म-प्रसाद को पाना है।

स्वाभाविक ही आ जाते हैं और मनुष्य में आकर्षण एवं सुन्दरता की अभिव्यक्ति होने लगती है। इसलिए संतों के सान्निध्य में जाकर उनके सत्संग का लाभ उठाना चाहिए।

अपने जीवन को प्रसन्नता की सुवास से महकाइये। अधिक-से-अधिक आनंद और प्रसन्नता के विचारों में रमण कीजिये एवं सुन्दर बनिये क्योंकि चित्त की प्रसन्नता में अक्षय सौन्दर्य निहित है।

मन शक्ति-केन्द्र है। उसका समूचे शरीर पर राज्य है। मन में दुःख और चिन्ताएँ जमी रहेंगी तो वे निश्चय ही कुरूपता उत्पन्न करेंगी, स्वास्थ्य-सौन्दर्य नष्ट कर देंगी। इसलिए कैसी भी दुःखद परिस्थिति आये तो ज्ञान का सहारा लीजिये कि 'यह परिस्थिति आयी है तो जायेगी भी। मैं इसका चिंतन करके मन को क्यों खराब करूँ ? मैं तो दुःखहारी श्रीहरि का चिंतन करके उनके आनंदस्वरूप में गोता लगाऊँगा। मैं परिस्थितियों के पहले था, बाद में भी रहूँगा। परिस्थितियाँ अनित्य हैं। परिस्थितियों का साक्षी मेरा आत्मदेव नित्य है, रोम-रोम में रम रहा है, ॐ... ॐ...।' परिस्थितियों की परेशानियों से पार करनेवाले इस मंत्र का जप करें : **ॐ रां रां रां रां रां रां रां रां कष्टं स्वाहा।** इससे अपने या अपने परिचित के कष्ट क्षीण किये जा सकते हैं।

बहुत गयी थोड़ी रही व्याकुल मन मत हो।
धीरज सबका मित्र है करी कमाई मत खो ॥

इस प्रकार जो मनुष्य त्यागरूपी सिंहासन पर आसीन है, प्रेमरूपी मुक्तामाला से युक्त है, निष्कामतारूपी श्वेत वस्त्र धारण करता है, प्रसन्नतारूपी सुवास से सुवासित है, शीलरूपी भूषण से सुशोभित है और ज्ञान का मुकुट जिसके सिर पर है, वह ऐसे अलौकिक सौन्दर्य से शोभने लगता है कि स्वयं सौन्दर्य-निधान, सर्वशक्तिमान परमात्मा भी उससे मिलने के लिए लालायित रहता है।

नरक के तीन द्वार

काम

क्रोध

लोभ

महाभारत में धर्मात्मा विदुर राजा धृतराष्ट्र से कहते हैं :

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥

'काम, क्रोध और लोभ - ये आत्मा का नाश करनेवाले नरक के तीन द्वार हैं अर्थात् उसको अधोगति में ले जानेवाले हैं। अतः इन तीनों को त्याग देना चाहिए।'

(उद्योगपर्व-प्रजागर पर्व : ३३.६६)

'श्रीमद्भगवद्गीता' के १६वें अध्याय के २१वें श्लोक में भी यही बात आती है।

यदि मनुष्य पतन के इन तीन द्वारों - काम, क्रोध व लोभ को ठीक से समझ जाय तो पतन से बच सकता है तथा इस लोक और परलोक दोनों ही लोकों में सुखी हो सकता है। मनुष्य यदि काम, क्रोध, लोभ से संयुक्त रहा तो यहाँ भी बरबाद हो जायेगा और परलोक में भी दुःखी रहेगा, फिर न जाने किन-किन योनियों में यह जीव बेचारा भटकता रहेगा। कभी वृक्ष बनकर कुल्हाड़े सहेगा, कभी बैल, गधा बनकर भार ढोता फिरेगा तो कभी घोड़ा बनकर चाबुक की मार सहेगा।

जीव के जन्म-मरण के चक्र में घूमने का मूल कारण है कामना । अनेक प्रकार की कामनाएँ मानव-मन में उत्पन्न होती रहती हैं। यदि किसी कामना की पूर्ति होती है तो वह कामना लोभ में बदल जाती है और अगर उसकी पूर्ति में कोई अड़चन आती है तो वह क्रोध बन जाती है। ये ही काम, क्रोध और लोभ मानव को नरक में ले जाते हैं।

काम क्रोध अरु लोभ मोह की जब लग मन में खान।
तब लग दोनों एक हैं क्या मूरख अरु विद्वान ॥

कामासक्ति का परिणाम

वनवास के अंतिम वर्ष में अज्ञातवास के समय पांडव तथा द्रौपदी अपना नाम-वेश बदलकर राजा विराट के यहाँ रहते थे। उस समय द्रौपदी विराट नरेश की रानी सुदेष्णा की सैरन्ध्री नामक दासी के रूप में किसी प्रकार अपना समय व्यतीत कर रही थी।

रानी सुदेष्णा का भाई व राजा विराट का प्रधान सेनापति कीचक एक बार किसी कार्यवश अपनी बहन सुदेष्णा के भवन में गया। वहाँ अपूर्व लावण्यवती दासी सैरन्ध्री को देखकर वह उस पर आसक्त हो गया। कीचक ने नाना प्रकार के प्रलोभन सैरन्ध्री को दिये। सैरन्ध्री ने उसे समझाया, 'मैं पतिव्रता हूँ। अपने पति के अतिरिक्त किसी पुरुष की कभी कामना नहीं करती। तुम अपना पापपूर्ण विचार त्याग दो।'

किंतु कामांध कीचक ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी बहन सुदेष्णा को तैयार कर लिया कि वह सैरन्ध्री को उसके भवन में भेजे। रानी सुदेष्णा ने सैरन्ध्री के अस्वीकार करने पर भी उसे कुछ सामग्री लाने के लिए कीचक के भवन में भेजा। वहाँ कीचक सैरन्ध्री पर बलप्रयोग करने पर उतारू हो गया तो वह धक्का देकर राजा विराट की सभा में भागी परंतु राजा विराट कीचक को कुछ भी कहने का साहस न कर सके।

अंत में सैरन्ध्री भीम के पास गयी। भीमसेन की सलाहानुसार सैरन्ध्री ने दूसरे दिन कीचक को नाट्यशाला में आने के लिए कहा। वहाँ सैरन्ध्री की जगह पर स्वयं भीमसेन जाकर सो गये। कामांध कीचक सज-धजकर नाट्यशाला पहुँचा और अँधेरे में भीम को सैरन्ध्री समझकर उस पर हाथ रखा, तब उछलकर भीमसेन ने कीचक को नीचे पटक दिया।

दोनों में घमासान मल्लयुद्ध हुआ और अंत में कीचक भीमसेन के हाथों मारा गया। अपनी कामासक्ति के ही कारण कीचक की दुर्दशा हुई।

क्रोध का परिणाम

चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक के पास जाकर एक सेनापति ने स्वर्ग-नरक के विषय में अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। दार्शनिक ने उसका परिचय पूछा, तब उसने अपना परिचय देते हुए अपने कुछ वीरतापूर्ण कार्यों का भी वर्णन किया।

दार्शनिक ने जोर-से ठहाका लगाते हुए कहा : ''शक्ल-सूरत से तो आप सेनापति नहीं, बल्कि भिखारी लगते हैं। मुझे विश्वास नहीं होता कि आपमें हथियार पकड़ने की क्षमता है!''

सेनापति को इन अपमानजनक बातों से क्रोध आया। उसने उत्तेजित होकर तलवार म्यान से बाहर निकाली।

सेनापति को क्रोधित देखकर दार्शनिक फिर हँसे और बोले : ''अच्छा, तो आप तलवार भी रखते हैं! शायद काठ की होगी, लोहे की होती तो अब तक आपके हाथ से छूटकर गिर गयी होती। आपकी कलाइयों में हथियार उठाने की ताकत ही नहीं है। आप भला क्या चलायेंगे?''

तो आप तलवार भी रखते हैं! शायद काठ की होगी, लोहे की होती तो अब तक आपके हाथ से छूटकर गिर गयी होती। आपकी कलाइयों में हथियार उठाने की ताकत ही नहीं है। आप भला क्या चलायेंगे?

सेनापति आपे से बाहर हो गया। क्रोध से उसकी आँखें अंगारों की तरह दहकने लगीं। ऐसा लगा कि अब वह वार कर बैठेगा। तभी दार्शनिक गंभीर हो गये और बोले : ''देख रहे हो? यही नरक है। क्रोध में उन्मत्त होकर तुमने विवेक खो दिया और पाप करने के लिए तैयार हो गये।''

सेनापति शांत हो गया। उसने तलवार म्यान में रख दी। तब दार्शनिक ने कहा : ''विवेकशीलता के कारण अपनी भूलों का बोध होने लगता है। जब चित्त शांत हो जाता है, मन-मस्तिष्क में स्थिरता आ जाती है तब मन में एक विलक्षण आनंद की अनुभूति होती है। इसी आनंदपूर्ण स्थिति का नाम स्वर्ग है।''

लोभ का दुष्परिणाम

प्राचीन काल में सृंजय नाम के एक राजा थे। उनको कोई पुत्र न था, केवल एक कन्या थी। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणों की सेवा प्रारंभ की। राजा के दान व सम्मान से संतुष्ट होकर ब्राह्मणों ने देवर्षि नारद से राजा के लिए पुत्रप्राप्ति की प्रार्थना की।

ब्राह्मणों की प्रार्थना से संतुष्ट होकर देवर्षि नारद ने राजा से कहा : ''तुम कैसा पुत्र चाहते हो?''

राजा सृंजय के मन में लोभ आ गया। उन्होंने प्रार्थना की : ''ऐसा पुत्र होने का वरदान दें जो सुंदर हो, स्वस्थ हो, गुणवान हो तथा उसके मल-मूत्र, थूक-कफ आदि स्वर्णमय हों।''

देवर्षि ने कुछ सोचकर 'एवमस्तु' कह दिया। उनके वरदान के अनुसार राजा को पुत्र प्राप्त हुआ। राजा ने पुत्र का नाम सुवर्णष्ठीवी रखा। अब राजा सृंजय का धन दिनोंदिन बढ़ने लगा। उनके पुत्र का समाचार सारे देश में फैल गया। दूर-दूर से लोग उसे देखने आने लगे।

डाकुओं ने भी यह समाचार पाया और एक दिन अवसर पाकर वे राजकुमार को उठा के वन में ले गये। वहाँ पहुँचने पर उनमें विवाद हो गया, अधिक समय तक राजकुमार को छिपाये रखना अत्यंत कठिन था। सबने निश्चय कर लिया कि राजकुमार को मारकर जो स्वर्ण मिले, उसे परस्पर बाँट लिया जाय। उन लोगों ने राजकुमार के टुकड़े-टुकड़े कर डाले किंतु रत्तीभर भी सोना न मिला।

लोभ के वश होकर राजा सृंजय ने ऐसा पुत्र माँगा कि उसकी रक्षा संभव न हो सकी। उनको पुत्रशोक सहन करना पड़ा। डाकुओं ने लोभवश राजकुमार की हत्या की, धन तो उन्हें मिला नहीं बल्कि पाप के भागी हुए और राजदंड पाया।

मनुष्य के पतन के यही तीन द्वार हैं : काम, क्रोध और लोभ। धन का लोभ, सत्ता का लोभ, सौंदर्य का लोभ मनुष्य को परेशान कर देता है। लोभ यदि करना ही है तो हृदय को सजाने का लोभ करो, सत्शास्त्रों का ज्ञान पाने का, हरिनाम-जप का, सत्कर्म करने का लोभ करो।

(शेष पृष्ठ २१ पर)

सुखमय जीवन का महामंत्र

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)
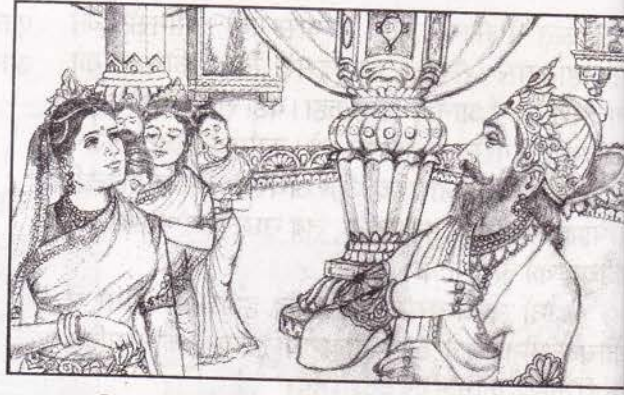
दशरथजी अपने चारों पुत्रों का विवाह कराके बहुओं को लेकर घर पहुँचे । उसके बाद कौशल्याजी तथा अन्य लोग जो जनकपुर नहीं गये थे, वे दशरथजी के श्रीमुख से विवाह की वार्ता सुनकर गद्गद हो रहे थे।

कौशल्याजी ने कहा : ''महाराज ! जनकजी के विषय में बताने की कृपा कीजिये ।'' तब दशरथजी की आँखों से झर-झर आँसू बरसने लगे । कौशल्याजी ने अनुमान लगाया कि शायद जनकजी ने दहेज कम दिया है, इसीलिए दशरथजी दुःखी हैं तो कहा :

''महाराज ! भगवान ने हमें बहुत कुछ दिया है, दहेज की आवश्यकता नहीं है। बस, चार कन्याएँ मिल गयीं न; मिथिलानरेश ने उन्नीस-बीस रखा हो तो भी क्या फर्क पड़ता है ?'' यह सुनकर दशरथजी और गंभीर हो गये। नेत्रों से और आँसू झरने लगे।

'अपने कारण कोई रोये, पीड़ित हो यह अच्छा नहीं' - यह सोचकर कौशल्याजी राजा दशरथ से माफी माँगने लगीं : ''महाराज ! मैंने पूछकर आपको दुःखी किया है। मुझे क्षमा करें।''

अपनेवालों से न्याय, दूसरे से उदारता - यह दिलों को व कुटुम्ब को जोड़कर रखता है। दशरथजी ने परिवार को इतने बढ़िया ढंग से जोड़ा कि बड़ा हादसा हुआ, रामराज्य के बदले रामवनवास हुआ फिर भी परिवार अंदर से टूटा नहीं।

तब दशरथजी ने कहा : ''जो अवसर मिथिलानरेश को मिला था, कन्यादान करके कन्याओं को विदा करने का, वह अवसर मुझे कभी नहीं मिलेगा। मुझे तो चार बेटे ही हैं।'' कौशल्याजी ने ढाढ़स बँधाया : ''महाराज ! चार बहुएँ भी तो आपकी चार पुत्रियाँ ही हैं। इन्हें ही अपनी बेटियाँ मान लीजिये।'' दशरथजी ने कहा : ''नहीं नहीं, कौशल्ये ! मिथिलानरेश ने अपनी बेटियों का बाल्यकाल से युवावस्था तक पालन-पोषण कर सुशिक्षित किया। विदाई के समय वे भी झर-झर आँसू बरसा रहे थे। कन्या को वर्षों तक पाल-पोसकर माँ-बाप जब उसकी विदाई करते हैं, तब उनके हृदय में कैसी व्यथा होती होगी, यह तो वे ही जानें ! उनकी व्यथा याद करके मेरा हृदय व्यथित हो रहा है। 'दहेज कम मिला है' - ऐसा तो मुझे सपने में भी नहीं होता । दहेज देखकर खुश होनेवाले और दहेज की कमी से दुःखी होनेवाले लोग तो बहुत छोटी मति के होते हैं । कौशल्ये ! मुझे मिथिलानरेश की पीड़ा याद आती है, उससे मैं पीड़ित हो रहा हूँ।''

फिर बहुओं को बुलाकर दशरथजी ने उपदेश दिया । बाद में कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी से गद्गद कंठ से भावभरे शब्दों में बोले : ''पुत्रवधुएँ अपने माता-पिता, घर-परिवार, सहेलियों व स्नेहियों को छोड़कर तुम्हारे घर में आयी हैं। इन्हें यह जगह नयी लगती होगी । तुम लोग इनको कैसे रखोगी ?''

''महाराज ! हम इन्हें अपनी बेटियों की नाईं स्नेह से रखेंगे।''

तब महाराज ने बहुत भाव-भरा उपदेश दिया :

बधू लरिकनीं पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥

(रामचरित. बाल. : ३५५.४)

बहुएँ अभी बच्चियाँ हैं, पराये घर आयी हैं। इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलकें रखती हैं (जैसे पलकें नेत्रों की सब प्रकार से रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना)।

बहुओ ! तुम भी सासुओं को हृदय में ऐसे समा लेना कि सासुओं को लगे नहीं कि बहुएँ पराये घर की हैं।

सासु का कर्तव्य है कि बहुओं को अपने हृदय में, अपनी गोद में जगह दे। बहुओं का कर्तव्य है कि सास-ससुर को अपने दिल में जगह दे; सासु के दिल को जीत ले, सासु की अंतर्यामी बने। सासु का कर्तव्य है कि बहू की अंतर्यामी बने। पत्नी का कर्तव्य है कि पति की अंतर्यामी बने; मौसम के अनुरूप पति के लिए भोजन-छाजन आदि की व्यवस्था करे और पति का कर्तव्य है कि पत्नी के विकास का एक स्तंभ बन जाय। यदि सास बहू की और बहू सास की अंतर्यामी बन जाय तो कुटुम्ब, कुल-खानदान स्नेह से भरा रहेगा।

बिटिया ! लड़-झगड़ के, बिखर के क्यों अपनी शक्तियों का ह्रास करना ? बहुरानियाँ ! ससुराल में, कुटुम्ब में कुछ उन्नीस-बीस हो जाय; कभी सासु ने, ससुर ने या जेठ ने कुछ कह दिया और आपका मन उद्विग्न हो गया हो तो माँ या बाप को अथवा स्नेहियों को खबर करके उनको दुःख में क्यों डुबाना ? उस वक्त तुम्हारा जो मन था, थोड़ी देर के बाद वैसा नहीं रहेगा, बदल जायेगा परंतु वे लोग जब-जब तुम्हारी व्यथा को याद करेंगे, व्यथित होते रहेंगे।

रानियों और चारों बहुओं का हृदय भर गया। मानों स्नेह की सरिता में सब एक हो रहे हैं। सासुएँ अलग दिखती हैं, बहुएँ अलग दिखती हैं, कुटुम्बी अलग दिखते हैं किंतु अलग-अलग शरीरों में जो अलग नहीं है, उस परमात्मा की प्रेमधारा में सब एकाकार हो रहे हैं।

अयोध्या के सम्राट का, वशिष्ठजी के इस सत्शिष्य का कैसा सदुपदेश है ! क्या अपने घर में तुम ऐसी प्रेमधारा नहीं बहा सकते ?

ससुर का कर्तव्य है कि दशरथजी की नाईं अपने कुल-खानदान में आयी हुई बहुओं को सत्शिक्षण दे। सासु का कर्तव्य है कि बेटी और बहू में झगड़ा हुआ है तो बहू का थोड़ा पक्ष ले। जमाई और बेटी में 'तू-तू, मैं-मैं' हो जाय तो जमाई का थोड़ा पक्ष ले। अपनेवालों से न्याय, दूसरे से उदारता - यह दिलों को व कुटुम्ब को जोड़कर रखता है। दशरथजी ने परिवार को इतने बढ़िया ढंग से जोड़ा कि बड़ा हादसा हुआ, रामराज्य के बदले रामवनवास हुआ फिर भी परिवार अंदर से टूटा नहीं। सबने उस हादसे को सहन कर लिया। कौशल्याजी या सुमित्राजी ने कैकेयी को खरी-खोटी नहीं सुनायी। सासु-बहू अथवा बहू-बहू या भाई-भाई आपस में लड़े नहीं। सबके हृदय में एक-दूसरे के लिए सम्मान है। सबके हृदय में छुपे हुए हृदयेश्वर को देखते हुए कुटुम्ब के सभी लोग स्नेह से जीते रहे।

पवित्र आत्मा भरत को राज्य मिलता है पर वह राज्य का भोगी नहीं बनता। राम भैया को बुलाने जाता है। भैया नहीं आ रहे हैं तो उनकी चरणपादुकाएँ लाता है। पादुकाएँ सिंहासन पर हैं और स्वयं दास की नाईं प्रतिदिन उन पादुकाओं को प्रणाम करके भरत तपस्वी का जीवन बिताते हुए राज्य करता है। हे भारतीय संस्कृति ! कैसी है तेरी उदारता !

आप सुखी होने में वो मजा नहीं, जो औरों को सुखी रखने में है। इससे आपको परमात्मसुख की प्राप्ति हो जायेगी।

(पृष्ठ १३ का शेष)

भगवान न्यायकारी हैं, न्याय करेंगे तो हमारी गलतियों का दंड देंगे, फिर हम भगवान की भक्ति क्यों करें ? तो बोले भगवान भक्तवत्सल हैं, भक्त के प्रति भगवान पक्षपात करते हैं। भक्त की प्रीति के कारण उसकी पुकार सुनके उसके दोष-अवगुण क्षमा करते हैं। दोषों को निकालने के लिए सत्प्रेरणा देते हैं या हलके-फुलके किसी दंड का अनुभव कराके अंदर से सहनशक्ति भी देते हैं।

भगवान रसमय हैं, करुणामय हैं, सुखमय हैं, क्षमा के भंडार हैं, ज्ञान के भंडार हैं, दया के भंडार हैं और अपनत्व से भरे हुए हैं। दुनिया में अगर कोई अपने हैं तो भगवान ही हैं। भगवान का एक-एक नाम केशव, दामोदर, अच्युत, भक्तवत्सल... अपनी-अपनी महिमा के अनुसार हमारे चित्त को पावन करता है। भगवान के अलग-अलग नामों में बड़ा ज्ञान भरा है, रहस्य भरा है।

इस प्रकार भगवान की दिव्यता, गुण, कृपालुता, सामर्थ्य, महिमा इन सबका विचार करते-करते, इनके अनुसार नाम खोजते-खोजते ऋषियों ने हाथ ऊपर उठा दिये कि नेति-नेति ! न इति अर्थात् इनका अंत नहीं है। **हरि अनंत हरिकथा अनंता।** भगवान अनंत हैं वैसे ही उनके नाम भी अनंत हैं। अनंत नाम हों फिर भी सारे नाम मिलकर भगवान के गुणों का, सामर्थ्य का, भावों का, उनकी करुणा-वरुणा का, सूझ-बूझ का पूरा वर्णन नहीं कर सकते और हजार नाम, लाख नाम, करोड़ नाम नहीं... सारे नाम तेरी सत्ता से पैदा होते हैं फिर भी तू अनामी है तथा सारे नामों की लीला तेरी है। इसका मतलब इतने नाम विचार करते-करते आखिर में उन महापुरुषों के संपर्क में जाओ तो जहाँ से सारे नामों की व्याख्या आती है, लीला दिखती है उस अनामी आत्मा में शांत हो जाओगे, उस परमात्मा को पा लोगे।

नौ योगीश्वरों के उपदेश

[श्रीमद्भागवत से]

यह भागवत-धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसे कानों से सुनने, वाणी से उच्चारण करने, चित्त से स्मरण करने, हृदय से स्वीकार करने या कोई इसका पालन करने जा रहा हो तो उसका अनुमोदन करने से ही मनुष्य उसी क्षण पवित्र हो जाता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं : कुरुनंदन ! देवर्षि नारद के मन में भगवान श्रीकृष्ण की सन्निधि में रहने की बड़ी लालसा थी। इसलिए वे श्रीकृष्ण की निज़ बाहुओं से सुरक्षित द्वारका में जहाँ दक्ष आदि के शाप का कोई भय नहीं था, विदा कर देने पर भी पुनः-पुनः आकर प्रायः रहा ही करते थे। राजन् ! ऐसा कौन प्राणी है, जिसे इन्द्रियाँ तो प्राप्त हों और वह भगवान के, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवताओं के भी उपास्य चरणकमलों की दिव्य गंध, मधुर मकरंद-रस, अलौकिक रूपमाधुरी, सुकुमार स्पर्श और मंगलमय ध्वनि का सेवन करना न चाहे ? क्योंकि यह बेचारा प्राणी सब ओर से मृत्यु से ही घिरा हुआ है। एक दिन की बात है, देवर्षि नारद वसुदेवजी के यहाँ पधारे। वसुदेवजी ने उनका अभिवादन किया तथा आराम से बैठ जाने पर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और इसके बाद पुनः प्रणाम करके उनसे यह बात कही।

वसुदेवजी ने कहा : संसार में माता-पिता का आगमन पुत्रों के लिए तथा भगवान की ओर अग्रसर होनेवाले साधु-संतों का पदार्पण प्रपंच में उलझे हुए दीन-दुखियों के लिए बड़ा ही सुखकर और बड़ा ही मंगलमय होता है। परंतु भगवन् ! आप तो स्वयं भगवन्मय, भगवत्स्वरूप हैं। आपका चलना-फिरना तो समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए ही होता है। देवताओं के चरित्र भी कभी प्राणियों के लिए दुःख के हेतु तो कभी सुख के हेतु बन जाते हैं। किंतु जो आप जैसे भगवत्प्रेमी पुरुष हैं, जिनका हृदय, प्राण, जीवन, सब कुछ भगवन्मय हो गया है, उनकी तो प्रत्येक चेष्टा समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए ही होती है। जो लोग देवताओं का जिस प्रकार भजन करते हैं, देवता भी परछाईं के समान ठीक उसी रीति से भजन करनेवालों को फल देते हैं, क्योंकि देवता कर्म के मंत्री हैं, अधीन हैं। लेकिन सत्पुरुष दीनवत्सल होते हैं अर्थात् जो सांसारिक सम्पत्ति एवं साधन से भी हीन हैं, उन्हें अपनाते हैं। ब्रह्मन् ! यद्यपि हम आपके शुभागमन और शुभदर्शन से ही कृतकृत्य हो गये हैं तथापि आपसे उन धर्मों के-साधनों के संबंध में प्रश्न कर रहे हैं, जिनको मनुष्य श्रद्धा से सुन भर ले तो इस सब ओर से भयदायक संसार से मुक्त हो जाय। पहले जन्म में मैंने मुक्ति देनेवाले भगवान की आराधना तो की थी, पर इसलिए नहीं कि मुझे मुक्ति मिले। मेरी आराधना का उद्देश्य था कि वे मुझे पुत्ररूप में प्राप्त हों। उस समय मैं भगवान की लीला से मुग्ध हो रहा था। सुव्रत ! अब आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं इस जन्म-मृत्युरूप भयावह संसार से जिसमें दुःख भी सुख का विचित्र और मोहक रूप धारण करके सामने आते हैं - अनायास ही पार हो जाऊँ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं : राजन् ! बुद्धिमान वसुदेवजी ने भगवान के स्वरूप और गुण आदि के श्रवण के अभिप्राय से ही यह प्रश्न किया था। देवर्षि नारद उनका प्रश्न सुनकर भगवान के अचिन्त्य अनंत कल्याणमय गुणों के स्मरण में तन्मय हो गये और प्रेम एवं आनंद में भरकर वसुदेवजी से बोले।

नारदजी ने कहा : यदुवंशशिरोमणे ! तुम्हारा यह निश्चय बहुत ही सुन्दर है, क्योंकि यह भागवत-धर्म के संबंध में है, जो सारे विश्व को जीवन दान देनेवाला है, पवित्र करनेवाला है। वसुदेवजी ! यह भागवत-धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसे कानों से सुनने, वाणी से उच्चारण करने, चित्त से स्मरण करने, हृदय से स्वीकार करने या कोई इसका पालन करने जा रहा हो तो उसका अनुमोदन करने से ही मनुष्य उसी क्षण पवित्र हो जाता है। चाहे वह भगवान का एवं सारे संसार का द्रोही ही क्यों न हो। जिनके गुण, लीला और नाम आदि का श्रवण तथा कीर्तन पतितों को भी पावन करनेवाला है, उन्हीं परम कल्याणस्वरूप मेरे आराध्यदेव भगवान नारायण का तुमने आज

मुझे स्मरण कराया है। वसुदेवजी ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, इसके संबंध में संतपुरुष एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। वह इतिहास है- ऋषभ के पुत्र नौ योगीश्वरों और महात्मा विदेह का शुभ संवाद। तुम जानते ही हो कि स्वायम्भुव मनु के एक प्रसिद्ध पुत्र थे प्रियव्रत। प्रियव्रत के आग्नीध्र, आग्नीध्र के नाभि और नाभि के पुत्र हुए ऋषभ। शास्त्रों ने उन्हें भगवान वासुदेव का अंश कहा है। मोक्षधर्म का उपदेश करने के लिए उन्होंने अवतार ग्रहण किया था। उनके सौ पुत्र थे और सब-के-सब वेदों के पारदर्शी विद्वान थे। उनमें सबसे बड़े थे राजर्षि भरत। वे भगवान नारायण के परम प्रेमी भक्त थे। उन्हींके नाम से यह भूमिखण्ड, जो पहले 'अजनाभवर्ष' कहलाता था, 'भारतवर्ष' कहलाया। यह भारतवर्ष भी एक अलौकिक स्थान है। राजर्षि भरत ने सारी पृथ्वी का राज्य-भोग किया, परंतु अंत में इसे छोड़कर वन में चले गये। वहाँ उन्होंने तपस्या के द्वारा भगवान की उपासना की और तीन जन्मों में वे भगवान को प्राप्त हुए। भगवान ऋषभदेवजी के शेष निन्यानवे पुत्रों में नौ पुत्र तो इस भारतवर्ष के सब ओर स्थित नौ द्वीपों के अधिपति हुए और इक्यासी पुत्र कर्मकाण्ड के रचयिता ब्राह्मण हो गये। शेष नौ संन्यासी हो गये। वे बड़े ही भाग्यवान थे। उन्होंने आत्मविद्या के सम्पादन में बड़ा परिश्रम किया था और वास्तव में वे उसमें बड़े निपुण थे। वे प्रायः दिगम्बर ही रहते थे और अधिकारियों को परमार्थ-वस्तु का उपदेश किया करते थे। उनके नाम थे - कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन। वे इस कार्य-कारण और व्यक्त-अव्यक्त भगवद्रूप जगत को अपने आत्मा से अभिन्न अनुभव करते हुए पृथ्वी पर स्वच्छंद विचरण करते थे। उनके लिए कहीं भी रोक-टोक न थी। वे जहाँ चाहते चले जाते। देवता, सिद्ध, साध्य-गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर और नागों के लोकों में तथा मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओं के स्थानों में वे स्वच्छन्द विचरते थे। वसुदेवजी ! वे सब-के-सब जीवन्मुक्त थे।

आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मैं इस जन्म-मृत्युरूप भयावह संसार से, जिसमें दुःख भी सुख का विचित्र और मोहक रूप धारण करके सामने आते हैं - अनायास ही पार हो जाऊँ।

एक बार की बात है, इस अजनाभ (भारत) वर्ष में विदेहराज महात्मा निमि बड़े-बड़े ऋषियों के द्वारा एक महान यज्ञ करा रहे थे। पूर्वोक्त नौ योगीश्वर स्वच्छन्द विचरण करते हुए उनके यज्ञ में जा पहुँचे। वसुदेवजी ! वे योगीश्वर भगवान के परम प्रेमी भक्त और सूर्य के समान तेजस्वी थे। उन्हें देखकर राजा निमि, आहवनीय आदि मूर्तिमान अग्नि और ऋत्विज आदि ब्राह्मण सब-के-सब उनके स्वागत में खड़े हो गये। विदेहराज निमि ने उन्हें भगवान के परम प्रेमी भक्त जानकर यथायोग्य आसनों पर बिठाया और प्रेम तथा आनंद से भरकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की। वे नवों योगीश्वर अपने अंगों की कांति से इस प्रकार चमक रहे थे मानों, साक्षात् ब्रह्माजी के पुत्र सनकादि मुनीश्वर ही हों। राजा निमि ने विनय से झुककर परम प्रेम के साथ उनसे प्रश्न किया। **(क्रमशः)**

(पृष्ठ १७ का शेष)

क्रोध करना है तो इस बात पर करो कि जीवन के इतने साल बीत गये, फिर भी परमात्मा में प्रीति नहीं हुई, परमात्मा का ज्ञान नहीं हुआ। क्रोध तो इस बात पर करो कि जिंदगी बीती जा रही है और अपने को चतुर मान रहे हैं ! धिक्कार है ऐसी चतुराई को!

कामना इस बात की करो कि मैं सुख-दुःख में सम कैसे रहूँ ? जन्म-मरण के चक्र को कैसे तोड़ूँ ? गार्गी की नाईं ब्रह्मज्ञान कैसे पा लूँ ? नानक, कबीर, महावीर की नाईं अपनी आत्मा में स्थिति कैसे कर लूँ ?

इन तीन विकारों का गला दबाकर अहंकार को मार दो। फिर मृत्यु के बाप की भी ताकत नहीं कि आपका बाल तक बाँका कर सके! ऐसा अमृत, ऐसा आत्मरस आपमें भरा है।

ॐ आनंद... ॐ शांति... ॐ विकारों से मुक्ति... परमात्मपद में विश्रांति ॐ... ॐ...

वीर्यवर्धक गुटिका

तुलसी के बीजों के चूर्ण में समान मात्रा में गुड़ मिलाकर छोटे बेर जैसी गोलियाँ बना लें। सुबह-शाम एक-एक गोली लेकर ऊपर से गाय का दूध पीने से (इस तरह चार मास लेने से) नपुंसकता दूर होती है, वीर्य बढ़ता है, नसों में शक्ति आती है, पाचनशक्ति सुधरती है और कैसा भी निराश हुआ पुरुष पुनः सशक्त होता है। इस प्रयोग के साथ 'यौवन सुरक्षा' (संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५ द्वारा प्रकाशित) पुस्तक का अध्ययन करना आवश्यक है।

भगवत्प्रीति व संसारप्रीति की छः लाभ-हानियाँ

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं : 'उद्धव ! मैं तुम्हें जो उपदेश देता हूँ, उसको विचार... यह शरीर मैं हूँ, संसार सच्चा है और यह कुटुम्ब मेरा है - ये भ्रमणाएँ छोड़कर जो वास्तव... मैं हूँ, जो तुम हो उसको जानो।'

तुम शरीर थे नहीं, रहोगे नहीं, शरीर रोज बदलता है, मन भी बदलता है। तुम पहले थे, अ... हो, शरीर के मरने के बाद भी रहोगे। उस अपनी आत्मज्योत को जानो। वही आत्मा परमात्मा होक... बैठा है, वही परमात्मा आत्मा होकर बैठा है। **उसको प्रीति करने से छः भव्य लाभ होते हैं औ... संसार को प्रीति करने से छः खतरनाक दुःख आते हैं।**

> **जो शरीर जल जायेगा, मर जायेगा उसीके लिए सारे झूठ-कपट, बेईमानी कर रहे हैं और ईश्वर का त्याग कर रहे हैं; कैसा कलियुग है !**

(१) भगवान इच्छामात्र से मिलते हैं। संसार इच्छामात्र से नहीं मिलता; मजूरी और प्रारब्ध स... मिलता है। संसार की चीजें - गाड़ी, रुपया, पैसा पानी हैं तो इच्छामात्र से नहीं मिलेंगी। उस... प्रारब्ध और मेहनत चाहिए, तब मिलेंगी किंतु भगवान को चाहो तो इच्छामात्र से मिलने का रास्त... भगवान खोल देते हैं।

(२) भगवान प्राप्त होने पर बिछुड़ते नहीं हैं। संसार का डॉलर, रुपया, पैसा - कुछ भी मिल... हो, वह छूटे बिना रहता नहीं। चाहे देशी आदमी हो चाहे विदेशी हो, सबको बचपन छोड़ना नहीं पड़... छूट गया। बचपन के खिलौने, बचपन के मित्र, बचपन के शरीर का ढाँचा छूट गया परंतु बचपन के... पहले जो भगवान थे, वे अभी भी हैं और मरने के बाद भी रहेंगे। भगवान शाश्वत हैं, शरीर और संसार... की चीजें नश्वर हैं; प्रारब्ध, पुरुषार्थ से मिली हुई दिखती हैं लेकिन टिकती नहीं हैं।

(३) भगवान जब मिलते हैं तो पूर्ण मिलते हैं लेकिन संसार पूर्ण नहीं मिलेगा। किसी देश का... एक हिस्सा भी पूर्ण रूप से तुम्हारा नहीं होगा। भारत का एक हिस्सा गुजरात पूर्ण रूप से तुम्हारा नहीं... हो सकता। अमदावाद भी तुम्हें पूरा नहीं मिल सकता। अरे ! छोटा-सा कलोल (गुज.) भी तुमको... पूरा नहीं मिल सकता है। वहाँ भी कइयों के मकान, हिस्से, जमीन आदि हैं पर भगवान जब मिलते हैं... तो पूरे ही मिलते हैं।

(४) भगवान को पाने की इच्छामात्र से पाप, भय, दुर्गुण नष्ट होने लगते हैं, कपट क्षीण होने... लगता है और विमल विवेक आने लगता है। पर संसार का सुख पाने की इच्छामात्र से ही सारे दोष... आने लगते हैं; पाप बढ़ने लगता है, कपट बढ़ने लगता है।

जिसकी ईश्वरप्राप्ति की लगन हो वह बेईमानी नहीं करेगा, झूठ नहीं बोलेगा। जितनी सच्चाई से ईश्वरप्राप्ति की लगन होगी, उतना ही उसका व्यवहार दिव्य हो जायेगा, पवित्र हो जायेगा।

(५) ईश्वरप्राप्ति की इच्छा से शांति आने लगती है और संसार को पाने की इच्छा से ही अशांति, तनाव शुरू हो जाता है। जिसको भगवान में प्रीति है उसको अशांति, दुःख के समय भी इतनी अशांति, दुःख नहीं होता, जितना संसार को चाहनेवाले को जरा-जरा बात में होता है।

(६) भगवान का सुमिरन करते-करते अगर मर गये तो भगवान के स्वरूप में लीन हो जायेंगे और संसार का सुमिरन करते-करते मर गये तो प्रेत होकर भटकेंगे कि चिड़िया होकर उस घर में भटकेंगे; मकोड़े होकर आयेंगे कि वहाँ के कुत्ते-बिल्ले होकर आयेंगे कि नरकों में जायेंगे, क्या पता ? संसार का चिंतन किया तो लोभ-मोह भटकायेगा, राग भी भटकायेगा, द्वेष भी भटकायेगा और न जाने किन-किन गर्भों में, जन्मों में लटकायेगा। भगवान का चिंतन किया तो राग-द्वेष शांत होंगे और भगवान महत्त्वपूर्ण हो जायेंगे तो जीव भगवान के पास जायेगा।

भगवान का सुमिरन करते हुए मृत्यु हुई तो भगवत्शांति को पायेंगे कि 'चलो, संसार तो वैसे ही छूटनेवाला था। जो कभी नहीं छूटते वे प्रभु मेरे हैं और मैं भगवान का; फिर अशांति काहे की ?'

लाला की लीला !

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक बड़े अद्‌भुत महात्मा थे। वे कुछ नहीं बोलते, कुछ नहीं करते। आखिर एक बार एक संत ने उनको रिझा लिया कि ''महाराज ! आपकी बड़ी ऊँची समझ है, ऊँची पहुँच है परंतु आप कुछ बोलते नहीं, कुछ उपदेश नहीं करते। जैसा भी हो रहा है, आपकी दृष्टि में वह सब अच्छा है, बढ़िया है। महाराज ! आप थोड़ा अपना परिचय दीजिये।''

महात्मा बोले : मैं पहले प्रवचन करता था, लोगों को उपदेश देता था कि तुमको ऐसा करना चाहिए, ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए, मुक्ति पानी चाहिए...

बड़े जोर-शोर से उपदेश देता था, विद्वान तो था ही। एक दिन मैं आरामकुर्सी पर बैठा था और तंद्रा आ गयी। देखा कि मैं बड़ा उपदेशक हूँ। बहुतों को उपदेश दिया कि जप-ध्यान ऐसे किया जाता है, प्रार्थना ऐसे की जाती है, श्लोक ऐसे बोले जाते हैं। उनमें एक आदमी निपट निराला था; कुछ भी नहीं सीख पा रहा था। मैंने उसे कहा : ''तू कैसा मूर्ख है ? वज्रमूर्ख लगता है।''

प्रार्थना का एक श्लोक १०० बार दुहराया तब बड़ी मुश्किल से वह याद कर पाया। मैंने चैन की साँस ली, हाश ! ऐसे वज्रमूर्ख को भी मैंने भगवान की प्रार्थना सिखा दी। अब उसका उद्धार हो जायेगा।

आगे देखा कि मैं देवलोक में विचरण करनेवाला सिद्धपुरुष हो गया। मैं देवदूत की नाईं आकाशमार्ग से मन की गति के समान तीव्रता से चलनेवाले विमान में जा रहा था, किंतु आश्चर्य यह था कि वह वज्रमूर्ख मेरी गति से भी तीव्र गति से मेरे पीछे आ रहा था ! मैं विमान में था लेकिन वह तो ऐसे ही आ रहा था !

मैंने आश्चर्य से पूछा : ''अरे, तू कैसे ?''

वज्रमूर्ख : ''महाराज ! पहले तो मैं ऐसे ही भगवान से बात कर लेता था कि तू ही सत्य है। मैं और क्या जानूँ ? तू ही दिल की धड़कनें चलाता है, तू ही आँखों से दिखवाता है। तू ही भोजन चबवाता है और भोजन को पचाता है... अब आपने जो श्लोक रटवाया था, मैं उसे भूल गया। आप कहते हैं कि मैं वज्रमूर्ख हूँ। श्लोक तो याद रहा नहीं, अब बताइये मैं कैसे प्रार्थना करूँ ?''

महात्मा : ''महात्मन् ! मैंने आपको पहचाना नहीं, इसीलिए वज्रमूर्ख कहा। आप अपने संकल्पमात्र से मेरी गति से भी आगे पहुँच गये।''

ऐसा कहके मैं प्रणाम करने को उनके चरणों में गिरा तो मैं कुर्सी से नीचे गिर गया। मेरे कच्चे विश्वास को पक्के विश्वास में बदलने के लिए ही लाला ने ऐसी लीला की। तबसे मैं मौन हो गया। यह बुरा है, यह भला है, यह शुद्ध है, यह अशुद्ध है, जमाना खराब है... मैं देखता हूँ कि सब उसीकी लीला है। अब तो बस, मैं उसका हूँ, वह मेरा है।

जिनको भोग और संसार प्रिय लगते हैं - वे कर्म करते हैं, भोगों से बिछुड़ते हैं; उनकी इच्छाएँ अधूरी रह जाती हैं, पापों का उदय हो जाता है, वे अशांति में पचते रहते हैं; सिर कूट-कूटके अशांत व दुःखी होकर मरते हैं और अंत में नरकों में उनका निवास होता है।

शांति से मरना है तो 'भगवान ही मेरे थे, हैं और रहेंगे।' - ऐसा दृढ़ विचार करके रहो। जैसे स्त्री फेरे फिरती है फिर दिनभर नहीं रटती कि 'मैं फलाने की पत्नी हूँ... फलाने की पत्नी हूँ...' पता चल गया कि 'मैं उसकी हूँ।' ऐसे ही एक बार पता चल जाय कि 'मैं भगवान का हूँ' फिर रटना नहीं पड़ता कि 'हम भगवान के हैं... हम भगवान के हैं...'

वास्तव में जीवात्मा परमात्मा का है और परमात्मा जीवात्मा के ही हैं। संसार की वस्तुएँ नहीं कहतीं कि हम तुम्हारी हैं पर भगवान कहते हैं :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

'इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है।'

जो तुम्हारा था नहीं, तुम्हारा रहेगा नहीं - उस संसार को मेरा मानके दुःखी होते हो। जो तुम्हारा था, है और रहेगा उसको मेरा मानने में क्या तकलीफ पड़ती है ? जो सदा है, सर्वत्र है, सबमें है, समरूप में है और अपना आत्मा होकर बैठा है, अगर उसको पाना, उसको जानना कठिन है तो किसको पाना सरल है ? जो सर्वत्र है, नित्य है, सखा है और परम सुहृद है, उसको पाने के लिए समय नहीं मिलता है तो किसके लिए समय है तुम्हारे पास ? जो पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा और अभी तनाव दे रहा है, उसीके लिए समय है तुम्हारे पास !

जो शरीर जल जायेगा, मर जायेगा उसीके लिए सारे झूठ-कपट, बेईमानी कर रहे हैं और ईश्वर का त्याग कर रहे हैं; कैसा कलियुग है !

संसार की असारता

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक नगरसेठ का युवान पुत्र रोज महात्मा की कथा सुनने जाता किंतु कथा पूरी होने से पहले ही उठकर चला आता। एक दिन महात्मा ने उससे इसका कारण पूछा।

युवक ने कहा : ''महाराज ! मैं अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र हूँ। मुझे घर लौटने में थोड़ी भी देर हो जाती है तो वे मुझे ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं। मेरी पत्नी भी मेरे लिए पलकें बिछाये रहती है। महाराज ! आप संसारियों के संबंध को मिथ्या बताते हैं परंतु आपको संसार का कोई अनुभव नहीं है।''

महात्मा बोले : ''यदि ऐसा ही है तो हम उनके प्रेम की परीक्षा क्यों न कर लें ? तुम यह जड़ी-बूटी खा लो । इससे तुम्हारा शरीर ठंडा हो जायेगा । प्राण ऊपर चढ़ जायेंगे । तुम मृतवत् हो जाओगे। तुम अंदर से सजग रहना, सारा तमाशा देख लेना।''

यह जानते हुए भी कि एक दिन सबको मरना है कोई जल पीने को तैयार न हुआ, उलटा जीवनदान देनेवाले महात्मा को ही मौत के मुख में धकेलने को सब तैयार हो गये !!

युवक ने महात्मा के आदेश का पालन किया। जड़ी-बूटी खाने से उसका शरीर एकदम ठंडा पड़ गया। माता-पिता ने घबराकर कई डॉक्टर-वैद्यों को बुलाया किंतु किसीका कोई इलाज कारगर न हुआ। युवक की पत्नी बहुत रो रही थी।

इतने में महात्मा आ पहुँचे। परिवारवालों ने उनसे प्रार्थना की : ''महाराज ! लड़के को स्वस्थ करने की कृपा करें, इकलौता पुत्र है।''

महात्मा ने पानी मँगवाया और युवक के मस्तक पर घुमाकर उतारा करते हुए कहा : ''किसीने टोना-टोटका कर दिया है। मैंने मंत्रशक्ति से उस टोने-टोटके को पानी में उतार दिया है। यदि इस युवक को बचाना है तो यह पानी किसीको पीना पड़ेगा।''

''महाराज ! पानी पीनेवाले की क्या दशा होगी ?''

''इसकी जो दशा है वह उसकी हो जायेगी लेकिन यह युवक बच जायेगा। तुम लोगों में से कोई इस पानी को पी ले।''

माता : ''मैं अपने लाड़ले के प्राण बचाने के लिए यह पानी पीने को तैयार हूँ, परंतु मेरी मृत्यु के बाद मेरे वृद्ध पति की सेवा कौन करेगा ?''

पिता : ''मैं भी यह पानी पी सकता हूँ पर मेरी मृत्यु के बाद बेचारी मेरी पत्नी की क्या दशा होगी ? वह मेरे बिना कैसे जीयेगी ?''

महात्मा ने विनोद किया : ''तुम दोनों आधा-आधा पी लो। दोनों के सभी क्रियाकर्म एक साथ हो जायेंगे।''

युवक की पत्नी ने कहा : ''मेरी वृद्धा सास ने तो संसार के सभी सुख भोग लिये हैं। मैं तो अभी जवान हूँ। मैंने अभी संसार के सुख देखे तक नहीं हैं, मैं क्यों

मरूँ ?''

युवक के अन्य सभी रिश्तेदारों ने भी कोई-न-कोई कारण बताकर जल पीने से इन्कार कर दिया। अंत में वे सब महात्मा से कहने लगे : ''महाराज ! आप ही पी जाइये। आपके पीछे रोनेवाला कोई नहीं है। आप हमेशा कहते हैं कि परोपकार सबसे बड़ा धर्म है। अतः आप स्वयं पीकर परोपकार कर दीजिये। हम लोग हर साल आपका श्राद्ध और ब्रह्मभोज करेंगे।''

वाह रे संसार ! यह जानते हुए भी कि एक दिन सबको मरना है कोई जल पीने को तैयार न हुआ, उलटा जीवनदान देनेवाले महात्मा को ही मौत के मुख में धकेलने को सब तैयार हो गये !!

महात्मा ने जल पी लिया। युवक महात्मा के संकल्प से ठीक हो चुका था। वह महात्मा के चरणों में गिर पड़ा।

''महाराज ! मैंने संसार की असारता देख ली। संसार के सभी संबंध स्वार्थ के हैं। यहाँ कोई किसीका नहीं है। अब आप कृपा करें।'' इतना कह युवक महात्मा के साथ चल पड़ा। परिवारवालों ने रोकने की बहुत कोशिश की, किंतु वह न रुका। युवक को उनके प्रेम की यथार्थता का अनुभव हो चुका था।

कबीरजी ने ठीक ही कहा है :

मन फूला-फूला फिरे जगत में, कैसा नाता रे ?
पेट पकडकर माता रोवे, बाँह पकड़कर भाई।
लपट-झपटकर तिरिया रोवे, हंस अकेला जाई॥

महात्मा के निर्देशानुसार 'आत्मा सत्य है। शरीर व संसार परिवर्तनशील है, मिथ्या है, नाशवान है और आत्मा साक्षी है, अपरिवर्तनशील है, शाश्वत है।' - यह तत्त्वज्ञान पाकर वह बुद्धिमान युवक तो मनुष्य-जन्म का फल पाने में सफल हो गया।

इस कथा में से तुम क्या लोगे ? और तुम अपने परमेश्वरीय सुख को, परमेश्वरीय स्वभाव को कब प्राप्त करोगे भैया ? भाइयो ! बहनो ! माताओ ! क्या यूँ ही जीवन बिता दोगे, जीवनदाता को पाये बिना ? हे भगवान ! सद्बुद्धि दे, सत्संगति दे।

कामविकार से बचना हो तो शिवजी, गणपतिजी, अर्यमादेव, हनुमानजी, भीष्मजी का सुमिरन करो सुबह-सुबह। काम से बचकर राम में मन लगाने की प्रार्थना करो - इतना तो कर सकते हो। दिन में भगवत्-स्मृति : हे नाथ ! हे दयालु ! सद्बुद्धि दे, तेरी प्रीति दे - इतना तो कर सकते हो मेरे भाई। सज्जनो, लाडले लाल, जल्दी हो जाओ निहाल !

अंधश्रद्धा के नाम पर सनातन धर्मावलंबियों के श्रद्धा-विश्वास-आस्था पर अविश्वास करनेवालों को करारा तमाचा

चकले पर अंकित हुई आसारामजी बापू की तस्वीर

कहलगाँव (सं. सू.) : सनोखर बाजार के तुलसीपुर गाँव में एक महिला द्वारा रोटी बनाते समय अचानक चकले पर आसाराम बापूजी की तस्वीर अंकित हो गयी। पाँच दिनों से संत श्री आसाराम बापूजी के अनुयायियों का यहाँ ताँता लगा है। पूनम देवी और श्रीकांत सिंह दंपति के घर मेले जैसा दृश्य है तथा लगातार भजन-कीर्तन और सत्संग चल रहा है।

घटना का विवरण यह है कि संत आसाराम बापू की शिष्या ४५ वर्षीया पूनम देवी १२ जनवरी की संध्या को रोटी पका रही थी। इस बार के ध्यान शिविर में शामिल नहीं हो सकने के लिए अफसोस करते हुए पूज्य गुरुदेव से क्षमा-याचना कर रही थी। उसी समय रोटी बेलनेवाले चकले पर संत आसारामजी का चित्र प्रकट हो गया।

भक्त महिला ने रोमांचित होकर परिजनों को पुकारा। देखते-देखते पूरे गाँव में बात फैल गयी और उनके यहाँ भीड़ जुट आयी। जाँच के लिए लोगों ने चाकू आदि से चित्र को खरोंचने का प्रयास किया। फिर भी चित्र नहीं मिटा। (**चित्र आवरण पृष्ठ २ पर**) अगले दिन से पूरे क्षेत्र के श्रद्धालुओं का ताँता तुलसीपुर आने लगा और मेला लग गया। लोग इस घटना को भक्त पर गुरु की कृपा के रूप में देख रहे हैं। कोई भी विपरीत बात सुनने को लोग तैयार नहीं हैं। कहलगाँव, जि. भागलपुर (बिहार) की श्री योग वेदान्त सेवा समिति के स्वयंसेवकों ने तुलसीपुर में शिविर लगा दिया है। **(दैनिक हिन्दुस्तान, १८-०१-०६)**

आमलकी एकादशी

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा : श्रीकृष्ण ! मुझे फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम और माहात्म्य बताने की कृपा कीजिये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : महाभाग धर्मनंदन ! फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम 'आमलकी' है । इसका पवित्र व्रत विष्णुलोक की प्राप्ति करानेवाला है । राजा मान्धाता ने भी महात्मा वसिष्ठजी से इसी प्रकार का प्रश्न पूछा था, जिसके जवाब में वसिष्ठजी ने कहा था :

'महाभाग ! भगवान विष्णु के थूकने पर उनके मुख से चन्द्रमा के समान कांतिमान एक बिन्दु प्रकट होकर पृथ्वी पर गिरा। उसीसे आमलक (आँवले) का महान वृक्ष उत्पन्न हुआ, जो सभी वृक्षों का आदिभूत कहलाता है। उसी समय प्रजा की सृष्टि करने के लिए भगवान ने ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और ब्रह्माजी ने देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, नाग तथा निर्मल अंतःकरणवाले महर्षियों को जन्म दिया। उनमें से देवता और ऋषि उस स्थान पर आये, जहाँ विष्णुप्रिय आमलक का वृक्ष था। महाभाग ! उसे देखकर देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ क्योंकि उस वृक्ष के बारे में वे नहीं जानते थे । उन्हें इस प्रकार विस्मित देख आकाशवाणी हुई : 'महर्षियो ! यह सर्वश्रेष्ठ आमलक का वृक्ष है, जो विष्णु को प्रिय है। इसके स्मरणमात्र से गोदान का फल मिलता है । स्पर्श करने से इससे दुगना और फल-भक्षण करने से तिगुना पुण्य प्राप्त होता है। यह सब पापों को हरनेवाला वैष्णव वृक्ष है। इसके मूल में विष्णु, उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कंध में परमेश्वर भगवान रुद्र, शाखाओं में मुनि, टहनियों में देवता, पत्तों में वसु, फूलों में मरुद्गण तथा फलों में समस्त प्रजापति वास करते हैं। आमलक सर्वदेवमय है। अतः विष्णुभक्त पुरुषों के लिए यह परम पूज्य है । इसलिए सदा प्रयत्नपूर्वक आमलक का सेवन करना चाहिए।'

ऋषि बोले : आप कौन हैं ? देवता हैं या कोई और ? हमें ठीक-ठीक बताइये।

पुनः आकाशवाणी हुई : जो सम्पूर्ण भूतों के कर्ता और समस्त भुवनों के स्रष्टा हैं, जिन्हें विद्वान पुरुष भी कठिनता से देख पाते हैं, मैं वही सनातन विष्णु हूँ।

देवाधिदेव भगवान विष्णु का यह कथन सुनकर वे ऋषिगण भगवान की स्तुति करने लगे । इससे भगवान श्रीहरि संतुष्ट हुए और बोले : 'महर्षियो ! तुम्हें कौन-सा अभीष्ट वरदान दूँ ?'

ऋषि बोले : भगवन् ! यदि आप सन्तुष्ट हैं तो हम लोगों के हित के लिए कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो स्वर्ग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला हो।

श्रीविष्णुजी बोले : महर्षियो ! फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में यदि पुष्य नक्षत्र से युक्त एकादशी हो तो वह महान पुण्य देनेवाली और बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाली होती है । इस दिन आँवले के वृक्ष के पास जाकर वहाँ रात्रि में जागरण करना चाहिए। इससे मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। विप्रगण ! यह व्रत सभी व्रतों में उत्तम है, जिसे मैंने तुम लोगों को बताया है।

ऋषि बोले : भगवन् ! इस व्रत की विधि बताइये। इसके देवता और मंत्र क्या हैं ? पूजन कैसे करें ? उस समय स्नान और दान कैसे किया जाता है ?

भगवान विष्णु ने कहा : द्विजवरो ! इस एकादशी को व्रती प्रातःकाल दंतधावन करके यह संकल्प करे कि 'हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मैं एकादशी को निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मुझे शरण में रखें।' ऐसा नियम लेने के बाद पतित, चोर, पाखण्डी, दुराचारी, गुरुपत्नीगामी तथा मर्यादा भंग करनेवाले मनुष्यों से वह वार्तालाप न करे। अपने मन को वश में रखते हुए नदी में, पोखरे में, कुएँ पर अथवा घर में ही स्नान करे। स्नान के

पहले शरीर पर मिट्टी लगाये।

※ मृत्तिका लगाने का मंत्र ※

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं जन्मकोट्यां समर्जितम् ॥

'वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं तथा वामन अवतार के समय भगवान विष्णु ने भी तुम्हें अपने पैरों से नापा था। मृत्तिके ! मैंने करोड़ों जन्मों में जो पाप किये हैं, मेरे उन सब पापों को हर लो।'

(पद्म पु., उ. खंड : ४७.४३)

※ स्नान का मंत्र ※

त्वं मातः सर्वभूतानां जीवनं तत्तु रक्षकम्।
स्वेदजोद्भिज्जजातीनां रसानां पतये नमः ॥
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु ह्रदप्रस्रवणेषु च।
नदीषु देवखातेषु इदं स्नानं तु मे भवेत् ॥

'जल की अधिष्ठात्री देवी ! मातः ! तुम सम्पूर्ण भूतों के लिए जीवन हो । वही जीवन, जो स्वेदज और उद्भिज्ज जाति के जीवों का भी रक्षक है । तुम रसों की स्वामिनी हो। तुम्हें नमस्कार है। आज मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों, नदियों और देव-संबंधी सरोवरों में स्नान कर चुका । मेरा यह स्नान उक्त सभी स्नानों का फल देनेवाला हो।' **(पद्म पु., उ. खंड : ४७.४४, ४५)**

विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह परशुरामजी की सोने की प्रतिमा बनवाये । प्रतिमा अपनी शक्ति और धन के अनुसार एक या आधे माशे सुवर्ण की होनी चाहिए। स्नान के पश्चात् घर आकर पूजा और हवन करे। इसके बाद सब प्रकार की सामग्री लेकर आँवले के वृक्ष के पास जाय। वहाँ वृक्ष के चारों ओर की जमीन झाड़-बुहार, लीप-पोत कर शुद्ध करे। शुद्ध की हुई भूमि में मंत्रपाठपूर्वक जल से भरे हुए नवीन कलश की स्थापना करे । कलश में पंचरत्न और दिव्य गंध आदि छोड़ दे । श्वेत चन्दन से उस पर लेपन करे। उसके कण्ठ में फूल की माला पहनाये। सब प्रकार के धूप की सुगन्ध फैलाये । जलते हुए दीपकों की श्रेणी सजाकर रखे। तात्पर्य यह है कि सब ओर से सुन्दर और मनोहर दृश्य उपस्थित करे । पूजा के लिए नवीन छाता, जूता और वस्त्र भी मँगाकर रखे। कलश के ऊपर एक पात्र रखकर उसे श्रेष्ठ लाजों (खीलों) से भर दे। फिर उसके ऊपर परशुरामजी की (सुवर्ण की) मूर्ति स्थापित करे। **'विशोकाय नमः'** कहकर उनके चरणों की, **'विश्वरूपिणे नमः'** से दोनों घुटनों की, **'उग्राय नमः'** से जाँघों की, **'दामोदराय नमः'** से कटिभाग की, 'पद्मनाभाय नमः' से उदर की, **'श्रीवत्सधारिणे नमः'** से वक्षःस्थल की, **'चक्रिणे नमः'** से बायीं बाँह की, **'गदिने नमः'** से दाहिनी बाँह की, **'वैकुण्ठाय नमः'** से कण्ठ की, **'यज्ञमुखाय नमः'** से मुख की, **'विशोक निधये नमः'** से नासिका की, **'वासुदेवाय नमः'** से नेत्रों की, **'वामनाय नमः'** से ललाट की, **'सर्वात्मने नमः'** से सम्पूर्ण अंगों तथा मस्तक की पूजा करे। ये ही पूजा के मंत्र हैं। तदनन्तर भक्तियुक्त चित्त से शुद्ध फल (आँवला) के द्वारा देवाधिदेव परशुरामजी को अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य का मंत्र इस प्रकार है :

नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते।
गृहाणार्घ्यमिमं दत्तमामलक्या युतं हरे ॥

'देवदेवेश्वर ! जमदग्निनंदन ! श्रीविष्णुस्वरूप परशुरामजी ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आँवले के फल के साथ दिया हुआ मेरा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

(पद्म पु., उ. खंड : ४७.५७)

तदनन्तर भक्तियुक्त चित्त से जागरण करे । नृत्य, संगीत, वाद्य, धार्मिक उपाख्यान तथा श्रीविष्णु-संबंधी कथा-वार्ता आदि के द्वारा वह रात्रि व्यतीत करे । उसके बाद भगवान विष्णु के नाम ले-लेकर एक सौ आठ या अट्ठाईस बार आमलक वृक्ष की परिक्रमा करे। फिर सवेरा होने पर श्रीहरि की आरती करे । ब्राह्मण की पूजा करके वहाँ की सब सामग्री उसे निवेदित कर दे। परशुरामजी का कलश, दो वस्त्र, जूता आदि सभी वस्तुएँ दान कर दे और यह भावना करे कि 'परशुरामजी के स्वरूप में भगवान विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् आमलक का स्पर्श करके उसकी प्रदक्षिणा करे और स्नान करने के बाद विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराये । तदनन्तर कुटुम्बियों के साथ बैठकर स्वयं भी भोजन करे।

सम्पूर्ण तीर्थों के सेवन से जो पुण्य प्राप्त होता है तथा सब प्रकार के दान देने से जो फल मिलता है, वह सब उपर्युक्त विधि के पालन से सुलभ होता है। इससे समस्त यज्ञों की अपेक्षा भी अधिक फल मिलता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। यह व्रत सब व्रतों में उत्तम है।

वसिष्ठजी कहते हैं : महाराज ! इतना कहकर देवेश्वर भगवान विष्णु वहीं अंतर्धान हो गये। तत्पश्चात् उन समस्त महर्षियों ने उक्त व्रत का पूर्णरूप से पालन किया । नृपश्रेष्ठ ! इसी प्रकार तुम्हें भी इस व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! यह दुर्द्धर्ष व्रत मनुष्य को सब पापों से मुक्त करनेवाला है।

(पद्म पुराण से)

ऋतु-संधिकाल में आहार-विहार

वसंत ऋतु शीत व उष्ण काल का संधिकाल है। अति शीत शिशिर व अति उष्ण ग्रीष्म ऋतु के मध्य में शरीर का संतुलन बना रहे, इसलिए यह प्रकृति की व्यवस्था है। इस समय आहार-विहार में धीरे-धीरे परिवर्तन करना जरूरी हो जाता है ताकि शरीर आनेवाली ग्रीष्म ऋतु के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके। अष्टांगसंग्रहकार वाग्भटाचार्यजी ने ऋतु-संधिकाल के विषय में कहा है :

तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्।
असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्॥ **(अष्टांगसंग्रह, अ : ४. ६१)**

अर्थात् ऋतु-संधिकाल में पहली ऋतु का आहार-विहार क्रमशः कम करते हुए आनेवाली ऋतु के अनुसार अनुकूल आहार-विहार धीरे-धीरे शुरू करना चाहिए। क्योंकि प्रथम ऋतुचर्या छोड़कर एकाएक दूसरी ऋतुचर्या आरंभ करने से असात्म्यज रोग होने की संभावना होती है।

वसंत ऋतु में (शिवरात्रि-होली पर्व के आस-पास) शरीरस्थ संचित कफ पिघलकर जठराग्नि को मंद कर देता है। अतः शीत ऋतु में सेवन किये जानेवाले पाकों, सूखे मेवों, खट्टे-मीठे फलों, दही तथा अन्य पौष्टिक खुराक का सेवन बंद कर अब हलके, रूखे, तीखे, कड़वे, कसैले पदार्थों का सेवन करना चाहिए। धाणी, मुरमुरे, जौ, चना, पुराने गेहूँ तथा मूँग, अदरक, सोंठ, अजवाइन, हल्दी, पीपरामूल, काली मिर्च, सूरण, सहजन की फली, बैंगन, करेला, मेथी, मूली, तिल अथवा सरसों का तेल आदि उष्ण व कफशामक पदार्थों का उपयोग करें। भोजन अर्ध मात्रा में अर्थात् पेट आधा भरे, इतना ही लें। दिन में न सोयें। तेज चलना, दौड़ना, कसरत करना, आसन, प्राणायाम (विशेषतः सूर्यभेदी) विशेष लाभदायी हैं। तिल के तेल से मालिश कर आँवला या त्रिफला चूर्ण अथवा बेसन का उबटन लगाकर गर्म पानी से स्नान करें।

कफशमन तथा जठराग्निवर्धनार्थ सुबह खाली पेट ३ से ५ ग्राम हर्रे चूर्ण शहद के साथ लें। सोंठ अथवा नागरमोथ मिलाकर उबाला हुआ पानी पीयें। सुबह २५ से ५० मि.ली. ताजा गौमूत्र अथवा १५ से २५ मि.ली. गौझरण अर्क (बहुत मोटे लोगों के लिए २५ से ३० मि.ली.) का सेवन संभावित सभी कफविकारों से रक्षा करने के लिए पर्याप्त है।

वज्र रसायन

शुद्ध हीराभस्म तथा रसायन चूर्ण के संयोग से बना यह कल्प देह को वज्र के समान दृढ़ व स्वर्ण के समान तेजस्वी, कांतिमान तथा सुंदर बनाता है। यह त्रिदोषनाशक, जठराग्नि व वीर्य वर्धक एवं दीर्घायुष्य प्रदायक है। मस्तिष्क को पुष्ट कर यह बुद्धि, धृति, स्मृति व इंद्रियों की कार्यक्षमता बढ़ाता है। नेत्र, हृदय, मस्तिष्क, अस्थि व प्रजनन संस्थान के लिए यह विशेष हितकारी है।

अनुचित आहार-विहार के कारण शरीर में विजातीय द्रव्य बनते हैं जो कि एकत्रित होकर गाठें बन जाती हैं। आगे चलकर ये कैंसर का रूप ले लेती हैं। वज्र रसायन इन दूषित कोषों को हटाकर नये कोषों का निर्माण करता है। अत्यंत क्षीणावस्था को प्राप्त मृतप्राय रोगी को भी नवजीवन प्रदान करने की अद्भुत क्षमता इसमें निहित है।

अतिरिक्त कोलेस्टेरॉल के कारण हृदय की रक्तवाहिनियों में उत्पन्न अवरोध को दूर कर यह हृदयोपघात (Heart Attack) से रक्षा करता है। सभी प्रकार के हृदयरोगों में यह अत्यंत लाभदायी है।

यह शुक्राणु उत्पन्न करनेवाली ग्रंथियों को बल देता है तथा नपुंसकता को दूर करने के लिए यह एक अद्वितीय औषधि है।

धातुक्षयजन्य वातव्याधि (पक्षाघात, सायटिका, संधिवात आदि), वार्धक्यजन्य दौर्बल्य, क्षय, राजयक्ष्मा (टी.बी.), श्वास, प्रमेह, शोथ, पांडु, गर्भाशयगत रोग, नेत्ररोग, मस्तिष्क-विकार आदि में विभिन्न अनुपानों के साथ देने से यह शीघ्र लाभ देता है।

सेवन-विधि : आधी से एक गोली दिन में एक या दो बार दूध, घी, मक्खन, शुद्ध शहद अथवा गुलकंद के साथ वैद्यकीय सलाहानुसार लें।

उत्तरायण २००६ से उत्तरायण २००७ तक के पर्व-जयंतियाँ

२६ जनवरी : गणतंत्र दिवस
१ फरवरी : गणेश जयंती
२ फरवरी : वसंत पंचमी
१३ फरवरी : गुरु रविदास जयंती (दिनांकानुसार)
१९ फरवरी : छत्रपति शिवाजी जयंती
२२ फरवरी : श्री रामदास नवमी
२३ फरवरी : स्वामी दयानंद सरस्वती जयंती
२६ फरवरी : महाशिवरात्रि
१ मार्च : श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती
१४ मार्च : चैतन्य महाप्रभु जयंती, होलिका दहन
१७ मार्च : संत तुकाराम द्वितीया
२१ मार्च : श्री एकनाथ षष्ठी
२५ मार्च : ब्रह्मलीन स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज प्राकट्य-दिवस
३० मार्च : चेटीचंड, गुड़ी पड़वा, चैत्री नूतन वर्ष आरंभ
५ अप्रैल : दुर्गाष्टमी
६ अप्रैल : श्रीराम नवमी
११ अप्रैल : महावीर स्वामी जयंती
१३ अप्रैल : श्री हनुमान जयंती
१९ अप्रैल : पूज्य संत श्री आसारामजी बापू का अवतरण-दिवस
३० अप्रैल : अक्षय तृतीया, श्री परशुराम जयंती
२ मई : श्रीमद् आद्य शंकराचार्य जयंती, श्री रामानुजाचार्य जयंती
४ मई : श्री गंगा जयंती
१३ मई : महात्मा बुद्ध जयंती
१४ मई : देवर्षि नारद जयंती
२८ मई : गंगा दशहरा प्रारंभ
३० मई : महाराणा प्रताप जयंती
७ जून : गायत्री जयंती
९ जून : वटसावित्री व्रतारंभ
११ जून : संत कबीर जयंती
७ जुलाई : चतुर्मास व्रतारंभ
११ जुलाई : गुरुपूर्णिमा
१ अगस्त : संत तुलसीदास जयंती
९ अगस्त : रक्षाबंधन
१३ अगस्त : नागपंचमी
१५ अगस्त : स्वतंत्रता दिवस
१६ अगस्त : श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
२७ अगस्त : गणेश चतुर्थी
२८ अगस्त : ऋषि पंचमी, संवत्सरी
८ सितम्बर : महालय श्राद्ध आरंभ
२३ सितम्बर : शारदीय नवरात्र प्रारंभ
२४ सितम्बर : पूज्य संत श्री आसारामजी बापू का आत्मसाक्षात्कार दिवस
२ अक्टूबर : दशहरा, महात्मा गाँधी जयंती, लालबहादुर शास्त्री जयंती
६ अक्टूबर : शरद पूर्णिमा
७ अक्टूबर : वाल्मीकि ऋषि जयंती
१७ अक्टूबर : ब्रह्मलीन मातुश्री माँ महँगीबा पुण्यतिथि
१९ अक्टूबर : धनतेरस, धन्वंतरि जयंती
२० अक्टूबर : नरक चतुर्दशी
२१ अक्टूबर : दीपावली
२४ अक्टूबर : भाई दूज
३१ अक्टूबर : श्री रंग अवधूत जयंती, ब्रह्मलीन स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज पुण्यतिथि, सरदार पटेल जयंती
१ नवम्बर : भीष्मपंचक व्रतारंभ
५ नवम्बर : गुरुनानक जयंती
१ दिसम्बर : गीता जयंती
४ दिसम्बर : श्री दत्तात्रेय जयंती

राग-द्वेष रहित होने का उपाय

किसी भी कर्म के फलरूप में प्राप्त परिस्थिति और भोगसमुदाय में राग नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिस प्राप्त पदार्थ में मनुष्य का राग होता है, उसी जाति के अप्राप्त पदार्थों का चिंतन होता है तथा उनके संस्कार चित्त पर अंकित होकर वासना का रूप धारण कर लेते हैं। इससे अंतःकरण मलिन होता रहता है।

राग यानी आसक्ति, द्वेष यानी वैरभाव - इन दोनों का समूल नाश करने के लिए साधक को चाहिए कि इन्द्रिय-ज्ञान के अनुसार अनुकूल और प्रतिकूल प्रतीत होनेवाली परिस्थितियों की प्राप्ति में जो सुख और दुःख होता है, उनमें किसी दूसरे को कारण न समझे। दूसरे व्यक्तियों को, क्षुद्र जीवों को या पदार्थों को सुख-दुःख का कारण मान लेने पर उनमें आसक्ति और वैर-भाव होना अनिवार्य है। जब तक मनुष्य का किसी व्यक्ति में या पदार्थ में राग-द्वेष विद्यमान रहता है, तब तक चित्त शुद्ध नहीं होता। उसके मन में अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिंतन होता रहता है।

वास्तव में यदि देखा जाय तो सुख-दुःख में दूसरा व्यक्ति, प्राणी या पदार्थ हेतु है भी नहीं। कोई पूछे कि कौन हेतु है तो इस विषय की मान्यता तीन भागों में बाँटी जा सकती है :

(१) यह कि पूर्वकृत अच्छे और बुरे कर्मों के फलरूप में ही समस्त प्राणियों को अनुकूल और प्रतिकूल भोग प्राप्त होते हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। यह मान्यता तो उन मनुष्यों की होती है, जो देहाभिमानी और कर्मासक्त हैं। अपनी इस मान्यता के अनुसार उनका बुरे कामों को छोड़कर अच्छे कामों में प्रवृत्त होने का निश्चय दृढ़ होता है, जो उनको उन्नतिशील बनाने में सहायक होता है। इसलिए यह मान्यता भी एक प्रकार से अच्छी है।

(२) सुख और दुःख की प्राप्ति का कारण एकमात्र मनुष्य का प्रमाद अर्थात् प्राप्त विवेक का आदर न करना यानी उसका सदुपयोग न करना ही है, दूसरा कुछ नहीं। क्योंकि विचारवान साधक को जब किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक प्रतिकूलता प्राप्त होती है, तब वह उससे दुःखी नहीं होता बल्कि यह समझकर प्रसन्न रहता है कि प्रतिकूलता ही मनुष्य के जीवन को उन्नत करनेवाली है। जिसके जीवन में प्रतिकूलता का अनुभव नहीं होता, उसकी उन्नति की ओर प्रगति नहीं होती। यदि प्रतिकूल परिस्थिति पैदा न होती तो शरीर और संसार से अहंता-ममता का दूर होना प्रायः संभव ही नहीं था। अतः प्रतिकूल परिस्थिति तो शरीर और संसार से अलग करनेवाली है। जब शरीर में अहंभाव और उससे संबंधित जगत में मेरापन न रहे, तब कोई भी परिस्थिति मनुष्य को सुख या दुःख देनेवाली हो ही नहीं सकती। यह मान्यता उन विचारशील साधकों की होती है, जो एकमात्र प्रमाद को ही अहंता-ममता का हेतु समझकर अपने प्राप्त विवेक का आदर करनेवाले हैं।

(३) तीसरी मान्यता हर एक परिस्थिति में सर्वत्र और सर्वदा भगवान की कृपा का दर्शन करनेवाले, भगवान पर निर्भर परम विश्वासी भक्तों की होती है। वे अनुकूल परिस्थिति में तो इस भावना से भगवान की अहैतुकी कृपा का अनुभव करके उनके प्रेम में विभोर हो जाते हैं कि वे परम सुहृद प्रभु मेरी हर एक आवश्यकता का कितना अधिक ध्यान रखते हैं। मुझ जैसे अधम प्राणी पर भगवान की कितनी दया है, जो अपनी सेवा कराकर मुझे अपना प्रेम प्रदान करने के लिए यह सामग्री और इसके उपयोग की योग्यता दी है। प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर वे यह सोचते हैं कि इस शरीर में और संसार में जो मैंने प्रमादवश सुख मान लिया था, जिसके कारण मैं अपने परम सुहृद प्रभु से विमुख हो रहा था, उस शरीर और संसार से विमुख करके अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भगवान ने कृपापूर्वक यह परिस्थिति दी है। भगवान की कैसी अनुपम दया है कि वे अपने दास को हर समय, हर एक प्रकार से अपना प्रेम प्रदान करने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस प्रकार भक्त प्रभु की कृपा का अनुभव करता हुआ उनके प्रेम में विभोर होता रहता है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार की ही मान्यताएँ अपने-अपने अधिकार के अनुसार प्राणी को उन्नतिशील बनाती हैं। इसके विपरीत जो दूसरे प्राणियों को या पदार्थों को अपने सुख और दुःख का हेतु मानता है, उसका सब प्रकार से पतन होता है, क्योंकि जिस प्राणी या पदार्थ को मनुष्य अपने सुख में हेतु मान लेता है, उसमें उसका राग हो जाता है और जिसको दुःख का हेतु मानता है, उससे द्वेष हो जाता है। ये राग और द्वेष मनुष्य को उन प्राणी-पदार्थों के चिंतन में लगाकर मन को मलिन एवं विक्षिप्त कर देते हैं। अतः उसको किसी भी समय शांति नहीं मिलती।

(ऋषि प्रसाद प्रतिनिधि)

डोंबिवली (मुंबई) में २६ से २८ दिसम्बर तक परम पूज्य बापूजी को अपने बीच पाकर साधकवृंद आनंदित हो उठे । पूज्यश्री के मुखारविन्द से निःसृत भगवदीय आनंद से सराबोर सत्संग के अमृतमय वचन डोंबिवलीवासियों के हृदय में अनुपम आह्लाद उत्पन्न कर रहे थे। शांति, संतोष, सौम्यता व तृप्ति के भावचिह्न उनके मनोभावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर रहे थे। वहाँ उपस्थित विशाल जनमेदनी को प्रतिबोध देते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''सत्संग से संसार की नश्वर वस्तुओं की आसक्ति मिटती है, निजस्वरूप के दर्शन पाने की कुंजियाँ प्राप्त होती हैं। जितना संसार को महत्त्व देते हैं उतना अगर भगवद् चिंतन को महत्त्व दें तो सांसारिक वस्तुएँ छाया की नाईं आपके पास हाजिर हो जायेंगी।''

३० दिसम्बर से १ जनवरी तक बापूजी का दर्शन-सत्संग पाकर पूना (महा.) के पुण्यशाली भक्तों के हृदय में श्रद्धा-भक्ति का समंदर हिलोरें लेने लगा । पूज्यश्री की अनुभवसंपन्न वाणी का रसपान करने पूनावासियों का विशाल भक्तसमुदाय उमड़ पड़ा। अध्यात्मज्ञान के मूर्द्धन्य ज्ञाता ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी की धीर-गंभीर वाणी में लवलीन हुए पूनावासी ! जैसे भँवरा कमल पर लुब्ध हो जाता है, ऐसे ही भगवद्ज्ञान के प्यासे जिज्ञासु भक्त संतवचनों पर हो जाते हैं। ऐसा ही दृश्य दृष्टिगोचर हुआ पूना के सत्संग-प्रांगण में। स्थिर तन, स्थिर मन और संतप्रेम से भरे नयन... भगवद् आनंद, भगवद् स्मृति का माधुर्यमय वातावरण आह्लादकारक रहा। पूना व आस-पास से आये हजारों-हजारों श्रद्धालु भक्तों के हृदयों में उस समय आत्मानंद की झलकें झलक उठीं, जब शक्तिपात वर्षा के आचार्य परम पूज्य बापूजी ने २ जनवरी को आलंदी आश्रम में ध्यानयोग के गहरे प्रयोग कराये। इन्द्रायणी नदी के तट पर स्थित आश्रम के सुरम्य, प्रदूषणरहित, प्राकृतिक वातावरण में ध्यान व भाव की अनुपम लहरियों में श्रद्धालुवृंद निमग्न हो गये।

११ से १५ जनवरी तक 'उत्तरायण शिविर' अमदावाद आश्रम (गुज.) में सम्पन्न हुआ। प्रथम दो दिवस विद्यार्थी भी शामिल हुए । पूज्य बापू ने उत्तरायण के पर्व पर जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति करने का, आत्मिक शांति, आत्मिक आनंद प्राप्त करने का संदेश शिविरार्थियों को दिया। पूज्य बापू ने कहा : ''संक्रान्ति तो हर माह होती है किंतु सूर्य जब मकर राशि में आता है तो मकर संक्रान्ति होती है। मकर संक्रान्ति अर्थात् सम्यक् क्रान्ति । एक-दूसरे की टाँग खींचकर, जातिवाद का जहर घोलकर की जानेवाली क्रांति नहीं अपितु इससे ऊपर उठने का नाम सम्यक् क्रान्ति है। मनुष्य को अपने जीवन से अज्ञानरूपी अंधकार को हटाकर समता का प्रकाश करना चाहिए । मानव-जीवन में व्याप्त राग-द्वेष, अज्ञान, कुसंस्कार आदि अंधकार के द्योतक हैं। मनुष्य के जीवन में सम्यक् क्रान्ति तभी हो सकती है, जब वह अज्ञान पर ज्ञान तथा कुसंस्कारों पर सुसंस्कारों का अंकुश रखे।''

ध्यान-सत्र के दौरान पूज्य बापूजी ने सम्प्रेक्षण शक्ति का प्रयोग कर साधकों को ध्यान की गहराइयों का अनुभव कराया । ध्याननिष्ठ पूज्य बापूजी ने शिविरार्थियों के बीच जाकर अपनी नूरानी निगाहों से शक्तिपात किया, जिससे विशाल मंडप में अष्ट सात्त्विक भाव हिलोरें लेने लगे। एक ओर जहाँ ध्यान की गहराइयों में साधकों ने गोते लगाये, वहीं दूसरी ओर ज्ञान की ऊँचाइयों को छूनेवाले राजा बलि के आख्यान को सुनाकर पूज्य बापूजी ने साधकों को बताया कि किस प्रकार राजा बलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य के वचनों को शिरोधार्य कर मन को बुद्धि में और बुद्धि को आत्मा-परमात्मा के चिंतन में लगाकर निजस्वरूप का ज्ञान पाया।

ज्ञान, भक्ति और योग के संगम 'उत्तरायण शिविर' के अंतिम दिन हजारों दंपतियों ने ६ माह के ब्रह्मचर्य-व्रत का संकल्प लिया। क्या आप भी कभी ऐसा संकल्प लेंगे ?

जी हाँ ! आधुनिक कम्प्यूटराइज्ड यंत्रों ने दर्शायी

देसी गाय के गोबर में छुपी अद्भुत शक्तियाँ

'वैदिक वास्तु शोध संस्थान' की वैज्ञानिक रिपोर्ट ने किया खुलासा : गाय के गोबर की धूपबत्ती जलाने से मानसिक शांति व शारीरिक स्वास्थ्य में बढ़ोतरी। रसायनों से बनी धूपबत्ती द्वारा वातावरण में तनाव।

हमारे सूक्ष्म दृष्टिसंपन्न ऋषि-मुनियों द्वारा रचित प्राचीन ग्रंथों में बताया गया है कि गाय का झरण व गोबर वातावरण को शुद्ध और पवित्र करते हैं तथा अधिकांश आधि-व्याधियों में उत्तम औषधि का कार्य करते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों के करीब ५० वर्षों के प्रयत्नों से किसी वस्तु या व्यक्ति के वातावरण (अवकाश-Space) में फैले आभामंडल अथवा पर्यावरणीय आभामंडल को चित्रित करनेवाले उपकरणों की खोज हुई। इन अत्याधुनिक उपकरणों की सहायता से 'वैदिक वास्तु शोध संस्थान, इंदौर' ने देसी गाय के गोबर से बनी 'गौ-चंदन धूपबत्ती' व विभिन्न रसायनों से निर्मित धूपबत्ती जलाने से वातावरण पर पड़नेवाले प्रभावों का अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकाला उससे 'गौ-चंदन धूपबत्ती' मानसिक शांतिप्रदायक व शारीरिक स्वास्थ्य-वर्धक सिद्ध हुई और रसायनों से निर्मित धूपबत्ती वातावरण में तनाव पैदा करनेवाली सिद्ध हुई। (विश्लेषण- परिणाम नीचे दिये गये हैं।)

जो रहस्य ऋषि-मुनियों को ध्यान के दिव्य क्षणों में सहज, स्वाभाविक रूप से स्फुरित हुए थे, उनकी पुष्टि अब आधुनिक विज्ञान के उपकरण भी कर रहे हैं।

गाय के गोबर से बनी गौ-चंदन धूपबत्ती नियमित जलाने से वास्तुदोषों का शमन होता है।

विश्लेषण-परिणाम

गौ-चंदन धूपबत्ती व रासायनिक धूपबत्ती जलाने से वातावरण में उत्पन्न प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। पर्यावरणीय आभामंडल व ऊर्जा पैटर्न के आधार पर किये गये इस विश्लेषण के निम्नलिखित परिणाम पाये गये :

१. रसायनों से निर्मित बाजारू धूपबत्ती जलाने पर वातावरण में ४०% तनाव (Stress) बढ़ गया।

२. 'गौ-चंदन धूपबत्ती' जलाने पर वातावरण की आध्यात्मिक एवं ब्रह्मांडीय ऊर्जा (Cosmic Energy) ५०% बढ़ गयी।

निष्कर्ष : 'गौ-चंदन धूपबत्ती' जलाने से वातावरण में उत्पन्न होनेवाली ऊर्जाएँ मानसिक शांति प्रदान करती हैं तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डालती हैं, जबकि रसायनों से निर्मित धूपबत्ती जलाने पर वातावरण में तनाव पैदा होता है।

वैदिक वास्तु शोध संस्थान, इन्दौर

नोट : यह अध्ययन 'ऊर्जा स्केनिंग उपकरण' (Energy Scanning Device) द्वारा किया गया। विभिन्न रंगों का प्रभाव निम्नानुसार है : अच्छे प्रभावी (Positive) रंग - सफेद, बैंगनी, जामुनी, हलका नीला, गहरा नीला। प्रभावहीन (Neutral) रंग - हरा। दुष्प्रभावी (Negative) रंग - हलका हरा, लाल, काला।

इस दौरान लिये गये आभामंडलों के चित्र पत्रिका के आवरण पृष्ठ ३ पर देखें।

सुख छाये संसार में, दुःखिया रहे न कोय। सबके मन जागे धरम, जन-जन सुखिया होय॥
इस भावना से उड़ीसा के कटक, राउरकेला व यवतमाल (महा.) के दरिद्रनारायणों में कंबल-वितरण।

सुख की चाह में लोग कई जीवन अपना खो देते हैं। सुख बाँटते हैं जो औरों में, जीने का मजा वो लेते हैं॥ गरीब-गुरबों में गर्म वस्त्र, कंबल व रजाई आदि का वितरण करते हुए चरखी-दादरी, जि. भिवानी (हरि.), हैदराबाद आश्रम तथा रेवाड़ी (हरि.) के भक्तगण।

जन-जन को सुसंस्कारित करने के उत्कृष्ट उद्देश्य से सत्साहित्य-वितरण कर आध्यात्मिक जागृति लाने का प्रयास कर रहे हैं लुधियाना (पंजाब); डिडवीं-टिक्कर, जि. हमीरपुर (हि.प्र.) व रायपुर (छ.ग.) के सेवाधारी साधक।

सत्साहित्य जीवन को सद्गुणों एवं सुसंस्कारों से परिपूर्ण कर उन्नति की ओर ले जाता है। भारतवर्ष के भावी कर्णधारों में शुभसंस्कारों के सिंचन हेतु सोलापुर (महा.) एवं बलांगीर व भुवनेश्वर (उड़ीसा) के बच्चों में पूज्यश्री के सत्साहित्य का वितरण।
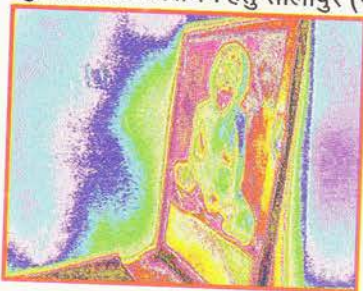
धूपबत्ती जलाने से पूर्व की आभा

गौ-चंदन धूपबत्ती जलाने के बाद की आभा

रासायनिक धूपबत्ती जलाने के बाद की आभा

जी हाँ! आधुनिक कम्प्यूटराइज्ड यंत्रों ने दर्शायी देसी गाय के गोबर में छुपी अद्भुत शक्तियाँ (पृष्ठ क्र. ३२)

सत्संग सरिता में नहाते हैं हम । क्या बतायें यहाँ क्या पाते हैं हम !!
मन मंदिर में बैठ गुरुजी, मन को दो उपदेश । आपके दर्शन बड़े हैं दुर्लभ मिलोगे किस वेष ?
आलंदी (महा.)
डोंबिवली (मुंबई)
पूना (महा.)
अमदावाद (गुज.)
POSTING AT RISHI PRASAD PSO BETWEEN 2ND TO 15TH OF E.M. & BACK ISSUE AT PSO AHD. REGD. UNDER RNI NO. 48873/91. POSTAL NO. GAMC 1132, WPP LIC NO. 207, BOTH ISSUED BY SSP AHD. & VALID UPTO 31-12-2008.
WPP LIC.NO. NW-9. REDG.NO. G2/MH/MR-NW-57/2006-08. POSTING AT MBI PATRIKA CHANNEL ON 9TH & 10TH OF E.M.
मकर संक्रांति का दिवस है आज, उत्तरायण की बेला आयी है ।
इसीलिए गुरुभक्तों ने, महफिल यहाँ जमायी है ।।
ऐसी महफिल जमायी है, पंडाल में नहीं समायी है ।
मानों किनारे को छूने, सागर ने ली अंगड़ाई है ।।